ललिता—प्यारी ! तुझे मेरी सौगंध । उदास न हो; मैं तो सब भाँति तेरी हूं और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूं । यह तो मैंने हँसी की थी । क्या मैं नहीं जानती कि तू मुझसे कोई बात न छिपावेगी और छिपावेगी तो काम कैसे चलेगा, देख !

हम भेद न जानिहैं जो पै कछू,
औ दुराव सखी हम मैं परिहै ।
कहि कौन मिलैहै पियारे पियैं,
पुनि कारज कासों सबै सरिहै ॥
बिन मोसों कहै न उपाय कछू,
यह बेदन दूसरी को हरिहै ।
नहि रोगी बताइहै रोगहि जौ,
सखी बापुरो बैद कहा करिहै ॥

चंद्रा०—तो सखी, ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है ? तू जानबूझ के बार-बार क्यों पूछती है ? ऐसे पूछने को तो मुँह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यों दुःख देती है ? हा !

ललिता—सखी ! मैं तो पहिले ही समझी थी, यह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा, नहीं तो मैं क्या नहीं जानती ?

चंद्रा०—सखी, मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूं कि यह ध्यान भुला दूं, पर उस निठुर की छबि भूलती नहीं, इसी से सब जान जाते हैं ।

ललिता—सखी, ठीक है ।

लगौंही चितवनि औरहि होति ।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति ।
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिक हूं अति ललचौंही बानि ।
छिपत न कैसहूं प्रीति निगोड़ी अंत जात सब जानि ॥

हेतु—लिए । **सरि हैं**—पूर्ण होगा । **वेदन**—दुःख, वेदना । **बापुरो**—विचारा । **मुँह चिढ़ाना**—बुरे ढंग से किसी बाह्य आचरण का अनुकरण करना । **निठुर**—निष्ठुर; कठोर हृदय वाला । **लगौंही चितवनि**—वह दृष्टि, जिसमें किसी के प्रति आसक्ति है । **दुराओ**—छिपाओ । **थिरत**—स्थित होती है । **निगोड़ी**—बुरे स्वभाव की; दुष्टा ।

सारांश—चंद्रावली की अधीरता पर ललिता उसे सान्त्वना देती है; और अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करती है । वह कहती है कि मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, जो तुझे श्री कृष्ण से मिला सकता है । 'चन्द्रावली' रहस्य पूर्ण शब्दों में प्रेम का रहस्य प्रगट करती है; और श्री कृष्ण की छवि को देखने के पश्चात् प्रेम उत्पन्न हो जाने के लिए विवशता प्रगट करती है; और नैनों की धृष्टता की भर्त्सना करती है ।

चंद्रा०—सखी, ठीक है, जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है। यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते, और यही दुष्ट अन्त में अपने किए पर रोते हैं।

सखी ये नैना बहुत बुरे।

तब सों भए पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे॥

ललिता—इसमें क्या संदेह है! मुझ पर तो सब कुछ बीत चुकी है। मैं इनके व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूं। ये निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं।

होत सखि ये उलझौंहैं नैन।

उरझि परत, सुरझ्यौ नहि जानत, सोचत समुझत हैं न॥
कोऊ नहिं बरजै जो इनको बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

चंद्रा०—और फिर इनका हठ ऐसा है कि जिसकी छबि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलें, क्या वह भूलने के योग्य हैं, हा!

अपने किये पर रोना—पाश्चात्ताप प्रगट करना। **पराये**—दूसरे के। **जुरे**—मिले। **मोहन के…दुरे**—नेत्र श्री कृष्ण के प्रेम में व्याकुल रहते हैं, और उन्हें न देखने से तड़पते रहते हैं। **निगुरे**—गुणों से विहीन, धृष्ठ। **खीझ्यौ**—अप्रसन्न हुआ। **बरज्यौ**—रोका, मना किया। **मुरे**—मुड़ते, हटते। **विष के…छुरे**—विष के बुझाए हुए छुरे; अर्थात अत्यधिक दुख देने वाले। **निगोड़े**—दुष्ट। **उलझौंहै**—उलझने वाले; फँसने वाले। **गैन**—गयन्द; हाथी। **लैन के दैन**—लेने के देने पड़ना, अधिक संकट उपस्थित होना।

सारांश—चन्द्रावली ललिता की नैनों की धृष्ठता वाली बात से सहमति प्रगट करती है, और स्वयं भी नेत्रों के प्रेम-स्वभाव और उससे उत्पन्न स्थिति का चित्रांकन करती है। 'ललिता' भी 'उरझि परत सुरझ्यो नहीं…' के द्वारा उसकी बात का समर्थन करती है।

नैना वह छबि नाहिंन भूले।
दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि, वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि, चित चोरैं।
वह बतरानि, मुरनि हरि को वह, वह देखन चहु कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि मुख ऐसी छबि निरखत तनमन धन सब हारे॥

ललिता—सखी! मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है। इससे मैं तुझे कुछ नहीं कहती; दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इससे रोकती।

चंद्रा—सखी! दूसरी होती तो मैं भी तो उससे यों एक संग न कह देती। तू तो मेरी आत्मा है। तू मेरा दुःख मिटावेगी कि उलटा समझावेगी?

ललिता—पर सखी! एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्वदा नहीं रहती।

वह छवि—श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि, जो देखने के पश्चात् चन्द्रावली की आँखों में समा गई है। **आवनि**—आना। **हँसनि**—हँसना। **चित चोरैं**—चित को चुराने वाली। **बतरानि**—बातें करने का ढंग; बतलाना। **मुरनि**—मुड़ना; मुड़ने का ढंग। **चहुकोरैं**—चारों ओर **धीरी**—मन्द। **बीरी**—पान। **पीत**—पीला। **काछे**—पहने हुए। **पिछौरी**—ओढ़ने की चादर। **ससि-मुख**—चन्द्रमा के समान मुख।

सारांश—चन्द्रावली श्री कृष्ण के अंग-सौन्दर्य का वर्णन करती है। वह उनके नेत्रों, उनकी मुसुकराहट, उनके बात करने के ढंग, उनके वेणु वादन, उनके पीताम्बर, उनके उत्तरीय, और उनकी मुख छवि पर सौ-सौ प्राण से निछावर है। ललिता को 'चन्द्रावली' से सहानुभूति है। 'चन्द्रावली' भी उस पर भरोसा और विश्वास करती है।

चंद्रा०—नहीं सखी ! ऊपर से दुखी नहीं रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं ।

मनमोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवती हैं ।
'हरिचन्द जू' प्रेम के फंद परी,
कुल की कुल लाजहि खोवती हैं ॥
दुख के दिन कों कोऊ भाँति बितै,
बिरहागम रैन सँजोवती हैं ।
हमहीं अपुनी दशा जानैं सखी,
निसि सोवतीं हैं किधौं रोवती हैं ॥

ललिता—यह हो, पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुँह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही री काहे,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है ।
त्यौंही 'हरिचन्द जू' बियोग औ सँजोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति, ताहि,
आरसी मैं रैन-दिन देखिबो करत है ॥

सखी ! तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द सार्थक करनेवाली और प्रेमियों की मंडली की शोभा है ।

मनमोहन—श्री कृष्ण । **तें**—से । **फंद**—जाल, बंधन । **बिरहागम रैन सँजोवती हैं**—मैं अपनी रात को वियोग के आगमन से सजाती हूं, अर्थात् वियोग से बहुत दुख पाती हूँ । **अपुनी**—अपनी । **निसि**—रात । **किधौं**—अथवा । **अपनी आरसी...आज खुला**—चन्द्रावली की आखों मे श्री कृष्ण बसे थे । चन्द्रावली आइने के द्वारा आखों मे बसे हुए श्री कृष्ण को देखा करती थी । **दरपन**—दर्पण । **बियोग औ सँजोग···परत है**—वियोग और संयोग में कोई अंतर न होना; अर्थात आँखों मे बसे हुए श्री कृष्ण को दर्पण के द्वारा देख कर वियोग में भी चन्द्रावली संयोगिनी की भाँति दिखाई देती थी । **परम पुनीत...प्रेम पथ बिचरत है**—श्री कृष्ण के प्रेम-मार्ग पर चलती है । **प्रेमियों की मंडली की शोभा है**—प्रेम के मार्ग पर चलने वालों में सर्व श्रेष्ठ है ।

सारांश—ललिता इस बात पर आश्चर्य करती है, कि उसने आज के अतिरिक्त कभी उसे दुखी नहीं देखा । 'चन्द्रावली' अपने वियोग की दशाओं का चित्र चित्रित करती हुई कहती है, कि उसका बुरा हाल है । पर ललिता को विस्मय होता है, क्योंकि उसने चंद्रावली को सदा एकही अवस्था में देखा है । वह कहती, है, कि आज मै समझ पाई, कि तू दर्पण में सदा अपना मुख क्यों देखा करती थी ।

चंद्रा०—नहीं सखी ! ऐसा नहीं है । मैं जो आरसी देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा ही है । हा ! (लंबी साँस लेकर) सखी ! मैं जब आरसी में अपना मुह देखती और अपना रंग पीलां पाती थी तब भगवान से हाथ जोड़कर मनाती थी कि भगवान ! मैं उस निर्दयी को चाहूँ पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आँसू टपकते हैं) ।

ललिता—सखी ! तुझे मैं क्या समझाऊँगी, पर मेरी इतनी विनती है कि तू उदास मत हो; जो तेरी इच्छा हो, पूरी करने को उद्यत हूं ।

चंद्रा०—हा ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे कुछ इच्छा नहीं है और न कुछ चाहती हूँ । तौ भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है ।

ललिता—सखी, मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है । संसार में जितना प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है । यह तेरी चाल संसार से निराली है । इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करनेवाली है ।

(चन्द्रावली नेत्रों में जलभरकर मुख नीचा कर लेती है)

(दासी आकर)

दासी—अरी ! मैया खीझ रही है के वाहि घर के कछू और हू काम-काज हैं के एक हाहा ठीठा ही है, चल उटि, भोर सों यहीं पड़ी रही ।

चंद्रा०—चल आऊँ, बिना बात की बकवाद लगाई । (ललिता से) सुन सखी ! इसकी बातें सुन, चल चलें । (लंबी साँस लेकर उठती है) ।

(तीनों जाती हैं)

॥स्नेहालाप नामक पहिला अंक समाप्त॥

आरसी—दर्पण । **निर्दयी**—कठोर । **उद्यत**—तैयार । **विरुद्ध**—विपरीत । **मैं जब आरसी...मुझे न चाहे, हा**—चन्द्रावली का प्रेम उच्च कोटि का है । वह स्वयं तो प्रेम की आग मे दग्ध होना चाहती है; पर प्रतिदान मे अपने आराध्य का दग्ध होना उसे प्रिय नहीं । **खीझ रही है**—अप्रसन्न हो रही है । **हा हा ठी ठी**—हँसी ठट्ठा । **स्नेहालाप**—प्रेम संबंधी वार्तालाप ।

सारांश—ललिता 'चन्द्रावली' के आरसी देख कर प्रसन्न होने का रहस्य अब समझती है । श्री कृष्ण उसकी आँखों मे बसे है । चन्द्रावली दर्पण के माध्यम से श्री कृष्ण को देखा करती थी । पर चन्द्रावली तो अपने शरीर का पीलापन देखा करती थी, और पीला पन देख कर यह समझा करती थी, कि उसके प्रेम का रंग किस प्रकार निखर रहा है । ललिता उसे धैर्य बँधाती है, और उसके निष्काम प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है ।

दूसरा अंक

स्थान — केले का वन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए

(वियोगिनी बनी हुई श्री चन्द्रावलीजी आती हैं)

चंद्रा — (एक वृक्ष के नीचे बैठकर) वाह प्यारे! वाह! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं; और निश्चय, बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता; जाने कैसे? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। जिसने जो समझा है, उसने वैसा ही मान रखा है। हा! यह तुम्हारा जो अखंड परमानंदमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शांति देनेवाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में भुले हुए हैं; कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देखकर चित्त लगाना और उससे मिलने के अनेक यत्न करना, इसीको प्रेम कहते हैं, और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं— पर प्यारे! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसीको मिलता है जिसे तुम आप देते हो। (कुछ ठहरकर) हाय! किससे कहूं, और क्या कहूँ, और क्यों कहूं, और कौन सुने और सुने भी तो कौन समझे—हा!

विलक्षण—अद्भुत, अलौकिक। **बिना तुम्हारी कृपा...कोई नहीं जानता**—पुष्टि मतानुसार भगवान श्री कृष्ण की कृपा से ही कोई उनके प्रेम को प्राप्त कर सकता है। और उनकी कृपा से ही सानिद्धय का लाभ भी होता है। **अखंड**—खंडित न होने वाला; पूर्ण। **परमानंदमय प्रेम**—अलौकिक आनंद से भरा हुआ प्रेम। **ज्ञान वैराग्यादिकों को... शांति देने वाला है**—ज्ञान और वैराग्य मार्ग से भी प्रेम मार्ग अधिक महत्व पूर्ण है। **चित्त लगाना**—प्रेम करना। **लंबी चौड़ी पूजा**—विधि विहित पूजा। **अमृत**—प्रेम का अमृत। **जिसे तुम आप देते हो**—जिस पर तुम्हारी कृपा-दृष्टि होती है।

सारांश—वियोग का ज्वार चन्द्रावली के हृदय-रूपी पयोधि में उफना रहा है। वह अपने आप ही श्री कृष्ण के प्रेम-महत्व का गान कर रही है। वह प्रेम-मार्ग की अलौकिक पुजारिनि है। उसकी दृष्टि में प्रेम मार्ग सर्वाधिक महत्व पूर्ण मार्ग है। उसकी प्राप्ति श्री कृष्ण भगवान की कृपा से ही हो सकती है।

जग जानत कौन है प्रेम-बिथा,
केहि सों चरचा या बियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै, कोउ
क्यौं बिन बात की रारहि लीजिए॥
नित जो 'हरिचंद जू' बीतै सहै,
बकिकै जग क्यौं परतीतहि छीजिए।
सब पूछत मौन क्यों बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए॥

क्योंकि—

मरम की पीर न जानत कोय।
कासो कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रहीं घर रोय॥
कोऊ जरनि न जाननहारी बे-महरम सब लोय।
अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊँ सोय॥
लोक लाज कुल की मरजादा दीनी है सब खोय॥
'हरीचंद' ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय॥

परन्तु प्यारे, तुम तो सुननेवाले हो? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो। प्यारे! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों?

प्रेम विथा—प्रेम का दुःख। **रार**—झगडा। **बकिकै...छीजिए**—संसार में सबके सामने प्रलाप करके विश्वास को क्यों नष्ट किया जाय। **मौन**—चुपचाप। **मरम की पीर**—उस स्थान की पीडा जो शरीर में अधिक सुकोमल होता है; प्रेम की दशा में अंतस्तल की पीड़ा। **जरनि**—जलन, दुःख। **बे महरम**—भेद से अनभिज्ञ। कहीं कहीं 'महरम' के स्थान पर 'बरहम' मिलता है। 'बे बहरम' का का अर्थ कठोर होता है। **लोंय**—लोग।

'**सारांश**—चन्द्रावली अपने आप ही अपनी प्रेम-पीड़ा के सबंध में प्रलाप करती है। वह स्वयं ही अपने को सान्त्वना भी देती है। उसकी प्रेम-पीडा को जानने और समझने वाला कोई नहीं है। पर उसके मन में अपने 'प्रेम' और श्री कृष्ण का अटूट विश्वास है। वह उनकी 'अनाथ नाथ' संज्ञा-डोर को पकड़ कर अपने मन को विश्वास-सूत्र से बाँधे हुए हैं।

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइकै प्रीति
निबाहन को क्यौ कलाम कियो॥
'हरिचन्द' भए निरमोही इतै निज
नेह को यों परिनाम कियो।
मन माहिं जो तोरन ही की हुती,
अपनाइकै क्यो बदनाम कियो॥

प्यारे, तुम बड़े निरमोही हो। हा! तुम्हें मोह भी नहीं आता? (आँख में आँसू भरकर) प्यारे! इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं; तो तुम किस नाते इतना सताते हो? क्योंकि—

जिय सूधी चितौन की साधै रहो,
सदा बातन मै अनखाय रहे।
हँसिकै 'हरिचन्द' न बोले कभूँ,
जिय दूरहि सो ललचाय रहे॥
नहिं नेकु दया उर आवत है,
करिके कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जिहिके बदले यो सताय रहे॥

हा! क्या तुम्हे लाज भी नही आती? लोग तो सात पैर सङ्ग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है!

चितै—देख कर। **मुरि**—मुड कर। **छाम**—दुबला पतला; क्षीण। **कलाम करका**—बात देना, प्रतिज्ञा करना। **नेह**—प्रेम। **हुतो**—थी। **सूधी**—सीधी। **चितौन**—चितवनि। **साधै**—अभिलाषा। **अनखाय**—बुरा मानना; अप्रसन्न होना। **नेकु**—थोटा भी। **सुभाय**—स्वभाव। इसका अर्थ 'अच्छा लगना' भी हो सकता है; अर्थात् तुम हृदय मे दया नहीं लाते, तो क्या अच्छे ज्ञात होते हो? **सात पैर**—विवाह के समय की विधि, जिसे भाँवरी कहते हैं; सप्त पदी।

सारांश—चन्द्रावली स्वयं ही प्रलाप करती है। श्री कृष्ण को प्रेम का उपालंभ देती है:—उसके मन को अपने सौंदर्य से चुरा कर अब उसके साथ ठिठोलियाँ कर रहे हैं। वह उन्हें प्रति क्षण देखना चाहती है, पर वे तो बात बात मे अप्रसन्न हो जाते हैं। कभी हँस कर बोलते भी नहीं. दूर से ही उसे ललचाते हैं। इतने कठोर हैं, कि हृदय मे दया भी नहीं लाते! न जाने पहले कौन सा सुख दिया था, कि आज उसके बदले में इतना दुःख दे रहे हैं।'

नहीं नहीं, तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है; यह बात नई है या तुम आप नये हो गए हो ? भला कुछ तो लाज करो ।

कित कों ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ ।
'हरिचन्द' भए हौ कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यो,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइके नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ ॥

प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते । क्योंकि—

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं,
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।
बिरुदावली आपुनी राखौ मिलौ,
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं ॥
'हरिचन्द जू' होनी हुती सो भई,
इन बातन सों कछू हात नहीं ।
अपनावते सोच बिचारि तबै,
जलपान कै पूछनो जात नहीं ॥

कित कौं—कहाँ । **ढरिगो**—चला गया । **रुखाई**—कठोरता; हृदय हीनता । **साजत हौ**—दिखा रहे हो । **कहा के कहा**—बहुत परिवर्तन होना । **अन बोलिबे**—न बोलने मे । **छाजत हौ**—शोभा देते हो । **दुरि भाजत हौ**—छिप कर भाग जाते हो । **रूसिबे में**—रुष्ट होने मे । **गति**—दशा । **बिरुदावली**—शरणागत की रक्षा का यश । **कछू हाथ नहीं**—कुछ भी मतलब पूरा नही होता । **जलपान कै...नहीं**—यह एक मुहाविरा है । पानी पी लेने के पश्चात् जाति का पूछना व्यर्थ है ।

सारांश—चन्द्रावली अपने आप ही कहती है, कि वह पहले का प्रेम कहाँ चला गया । क्यों इतनी कठोरता दिखा रहे हो । तुम्हारे मे इतना परिवर्तन ? मुझसे बोलते भी नहीं ! यह तुम्हें शोभा नहीं देता । मिलन की कौन कहे, देखते ही छिप कर भाग जाते हो । प्रेम करके ऐसा व्यवहार करते हो—तुम्हें लज्जा आनी चाहिए । लोग मुझे तुम्हारी कहते हैं । पर तुम सुनते ही नहीं; मेरी चिंता न करो, अपने यश की तो रक्षा करो । अब इन बातों में क्या रक्खा हुआ है, जो कुछ होना था, हो चुका । पानी पीकर जाति पूछना अज्ञानता है ।

प्राणनाथ !—(आँखों में आँसू उमड़ उठे) अरे नेत्रों ! अपने किए का फल भोगो।

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूछिकै सो मोहि भाखौ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतौ कियो अभिलाखौ ॥
काज बिगारि सबै अपनो
'हरिचन्द जू' धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यौं अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किए को फल क्यौं नहिं चाखौ ॥

हा !

इन दुखियान कों न सुख सपने हू मिल्यो,
योंही सदा व्याकुल बिकल अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचन्द जू' की बीती जानि औध जौ पै
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी ॥
देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि यातें
जौन-जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी ॥
बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायँगी ॥

धाइकै—दौड़कर। **भाखौ**—कहो। **केहिके**—किसके। **योंही**—इसी प्रकार। **औध**—अवधि। **देखि लीजौ...रहि जायँगी**—प्रियतम के दर्शन की उत्कट अभिलाषा।

सारांश—अपनी आंखों को साश्रु पाकर चंद्रावली आंखो की भर्त्सना करती है—"अब बोलो न, किससे पूछकर पहले तुम दौड़ कर श्री कृष्ण से मिलीं थीं। किसकी सलाह से मन में ऐसी अभिलाष की थी। क्षण में ही लोक-लाज भी छोड़ दी। अपना सब कुछ जब नष्ट कर दिया; तब अब धैर्य धारण करो। रोने-धोने से क्या होगा ? जैसा किया है, वैसा फल भोगो।

इन आँखों को स्वप्न में भी कभी सुख नहीं मिला। सदा विकल ही रहती हैं। यदि अवधि बीतने पर प्रियतम के दर्शन न हुए तो प्राण तो निकल जायँगे; पर ये आँखें कहां जायँगी ! बिना दर्शन के ये तो उस समय भी खुली ही रह जायँगी।

परन्तु प्यारे, अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगेगा जिसे देखकर यह धीरज धरेंगी, क्योंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पायेगी।

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
    अब का करिए कहि पेखिए का।
सुख छाड़िके संगम को तुम्हरे,
    इन तुच्छन को अब लेखिए का॥
'हरिचन्द जू' हीरन को व्यवहार कै
    काँचन कों लै परेखिए का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
    उन आँखिन सों अब देखिए का॥

इससे नेत्र ! तुम तो अब बन्द ही रहो। (आँचल से नेत्र छिपाती है)।

(बनदेवी*, संध्या + और वर्षा × आती हैं)

संध्या—अरी बनदेवी ! यह कौन आँखिनैं मूँदिकै अकेली या निरजन वन में बैठी रही है ?

बन०—अरी का तू याहि नायँ जानै ? यह राजा चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है।

वर्षा—तो यहाँ क्यों बैठी है ?

बन०—राम जानै। (कुछ सोचकर) अहा जानी ! अरी, यह तो सदा ह्याँई बैठी बक्यौ करैहै और यह तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है।

वर्षा—तौ चलौ यासूँ कछू पूछैं।

बन०—चल।

छाछ—मट्ठा। **अमृत पीकर...पियेंगी**—सर्वोत्तम वस्तु के पश्चात् कोई निकृष्ट वस्तु ग्रहण नहीं करता। **पेखिए**—देखिए। **का**—क्या। **संगम**—मिलाप। **तुच्छन**—संसार के तुच्छ सुख। **हीरन...परेखिए का**—हीरों को काम मे लाने के पश्चात् अब काँच देखना व्यर्थ है। **जिन आँखिन...अब देखिए का**—श्री कृष्ण के अलौकिक और अमर सौंदर्य के दर्शन के पश्चात् अब किसका सौंदर्य देखा जा सकता है। **बनदेवी**—[हरा कपड़ा, पत्ते का मुकुट, और पुष्पों की माला] **संध्या**—[गहरा नारंजी कपड़ा] **वर्षा**—[रंग साँवला, लाल कपड़ा] **निरजन**—एकांत, जन शून्य। **राजा चंद्रभानु**—गोपों के नृपति। **ह्याँई**—यहाँ ही। **बन के स्वामी**—श्री कृष्ण। **याँसू**—इससे।

सारांश—'चन्द्रावली' प्रलाप करती है, संसार सूना हो गया है। अब क्या किया जाय ? बिना तुम्हारे मिलन के संसार के सारे सुख व्यर्थ हैं। जिन आँखों ने तुम्हे देखा है, अब वे किसे देखें। वनदेवी, संध्या, और वर्षा का आगमन। तीनों चन्द्रावली की विक्षिप्तावस्था को देखती हैं। उसके संबंध के बातें करती हैं, और उसके समीप जाती हैं।

(तीनों पास जाती हैं)

बन०—(चंद्रावली के कान के पास) अरी मेरी बन की रानी चन्द्रावली! (कुछ ठहरकर) राम! सुनैहू नहीं है! (और ऊंचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चंद्रावली! (कुछ ठहर कर) हाय! यह तो अपुने सो बाहर होय रही है। अब काहें कों सुनैगी। (और ऊँचे सुर से) अरी! सुनै नाँयनै री मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली!

चंद्रा०—(आँख बंद किए ही) हाँ हाँ अरी क्यों चिल्लाय है? चोर भाग जायगो—

बन०—कौन सो चोर?

चंद्रा०—माखन को चोर, चीरन को चोर और मेरे चित्त को चोर।

बन०—सो कहाँ सों भाग जायगो?

चंद्रा०—फेर बके जाय है, अरी मैंने अपनी आँखिन मैं मूदि राख्यो है सो तू चिल्लायगी तो निकसि भागैगो।

(बनदेवी, चन्द्रावली की पीठपर हाथ फेरती हैं)

चद्रा०—(जल्दी से उठ, बनदेवी का हाथ पकड़कर) कहो प्राणनाथ! अब कहाँ भागोगे!

(बनदेवी हाथ छुड़ाकर एक ओर वर्षा-संध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास हट जाती है।)

चन्द्रा—अच्छा! क्या हुआ, योंही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूँ, तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ मै तो हाथ नहीं छोड़ने की। हा! अच्छी प्रीति निबाही!

(बनदेवी सीटी बजाती है)

सुर—आवाज, स्वर। **अपुने सों बाहर होय रही है**—मर्यादा की सीमा का त्याग कर रही है; चेतनता खो रही है। **अलख**—जो देखा न जा सके; ईश्वर। **लड़ैती**—प्यारी: दुलारी। **निकसि भागैगा**—निकल कर भाग जायगा। **प्रीत निबाही**—प्रेम का निर्वाह किया।

सारांश—बनदेवी, वर्षा, और संध्यातीनों चन्द्रावली के समीप जाती हैं। बनदेवी चन्द्रावली के कान मे कुछ कहती है; पर चन्द्रावली क्यो सुनने लगी। वह आखें बंद किए हुए अपनी ही धुन मैं तन्मय है। बनदेवी उसे जोर से बुलाती है; पर चन्द्रावली अपनी आँखों को खोले तो कैसे खोले! उसकी आँखों में तो माखन चोर बंद हैं। कहीं आँख खोलते ही भाग जाय तो? बनदेवी सहानुभूति से भर कर चन्द्रावली की पीठ पर हाथ फेरती है। चन्द्रावली उसको माखन चोर समझकर पकड़ लेती है। कहती है, अच्छी प्रीति का निर्वाह किया।

चन्द्रा—देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ाकर भाग गया, अब न जानें कहाँ खड़ा बंसी बजा रहा है। अरे छलिया कहाँ छिपा है ? बोल बोल कि जीते जी न बोलेगा ! (कुछ ठहरकर) मत बोल, मैं आप पता लगा लूँगी। (बन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षों ! बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे मोरो, इस समय नहीं बोलते ? नहीं तो रात को बोल-बोल के प्राण खाए जाते थे। कहो न वह कहाँ छिपा है ? (गाती है)

अहो अहो बन के रूख कहूं देख्यौ पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो॥
अहो कदंब अहो अंब निंब अहो बकुल-तमाला।
तुम देख्यौ कहुं मनमोहन सुन्दर नँदलाला॥
अहो कुंज बन लता बिरुध तृन पूछत तोसों।
तुम देखे कहुँ श्याम मनोहर कहहु न मोसों॥
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि।
तुम देखे कहुं प्रानपियारे मनमोहन हरि॥

(एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है। बन देवो फिर सीटी बजाती है)

चन्द्रा—अहा ! देखो उधर खड़े प्राणप्यारे मुझे बुलाते हैं, तो चलो उधर ही चलें। (अपने आभरण सँवारती है)

(वर्षा और संध्या पास आती हैं)

छलिया—छल करने वाला। **मेरा लुटेरा**—मेरा सब कुछ लूट लेने वाला। **प्राण खाना**—आकुल बनाना; परीशान करना। **रूख**—वृक्ष। **कितै**—किस ओर, कहाँ। **कदंब**—एक विशेष वृक्ष। **अंब-निंब**—आम और नाम। **तमाल**—काली खाल का एक ऊँचा विशेष वृक्ष। **विरुध**—पौधा। **खग**—पक्षी। **आभरण**—आभूषण

सारांश—प्रेम का उन्माद चन्द्रावली के मन पर पूर्ण रूप से छा गया है। वनदेवी हाथ छुड़ाकर दूसरी ओर खड़ी हो जाती है और सीटी बजाती है। चन्द्रावली का प्रणयावेग अधिक बढ़ जाता है। वह वृक्षों, लताओं, मोरों, खगों, मृगों, और गोवर्द्धन गिरि से भी अपने प्यारे के सम्बन्ध में प्रश्न करती हैं। इतना ही नहीं 'एक वृक्ष के पास जाकर उसे गले से लगाती है। संध्या पुनः सीटी बजाती है। चन्द्रावली समझती है, कि प्यारे का वेणु रव—है।

वर्षा०—(हाथ पकड़कर) कहाँ चली सजि कै ?—

चंद्रा०—पियारे सों मिलन काज,—

वर्षा०—कहाँ तू खड़ी है ?

चंद्रा०—प्यारे ही को यह धाम है।

वर्षा०—कहा कहै मुखसों ?—

चंद्रा०—पियारे प्रान प्यारे—

वर्षा०—कहा काज है ?

चन्द्रा—पियारे सो मिलन मोहि काम है।

वर्षा०—मैं हूं कौन बोल तौ ?—

चन्द्रा०—हमारे प्रान प्यारे हौ न ?—

वर्षा०—तू है कौन ?

चन्द्रा०—पीतम पियारो मेरो नाम है।

संध्या—(आश्चर्य से) पूछत सखी एकै के उत्तर बतावति जकी सो एक रूप आज श्यामा भई श्याम है।

(बनदेवी आकर चन्द्रावली की पीछे से आँख बन्द करती है)

चन्द्रा०—कौन है, कौन है ?

बन०—मै हूँ।

चन्द्रा०—कौन तू है ?

बन०—(सामने आकर) मै हूँ, तेरी सखी वृन्दा।

चन्द्रा०—तो मै कौन हूँ ?

बन०—तू तो मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली है न ? तू अपने हू को भूल गई।

चन्द्रा०—तो हम लोग अकेले बन में क्या कर रही हैं ?

बन०—तू अपने प्राणनाथै खोजि रही है न ?

मिलन काज—मिलने के लिए। **धाम**—स्थान; घर। **जकी**—चकित, स्तब्ध। **एक रूप...श्याम है**—'चन्द्रावली' के रूप मे आज श्यामा और श्याम की अभिन्नता दूर हो गई है। **खोजि**—पता लगाना।

सारांश—बनदेवी के सीटी बजाते ही वर्षा, और संध्या भी चन्द्रावली के समीप पहुँच जाती हैं। वर्षा चन्द्रावली का हाथ पकड लेती है, और प्रश्न करती है—"कहाँ जा रही है, कहाँ खड़ी है। क्या कह रही है, मैं कौन हूँ, तू कौन है ?" पर चन्द्रावली तो अपने को भूल चुकी है। वह सिर से लेकर पैर तक कृष्णमय हो चुकी है। उसे 'कृष्ण' के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता है। वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में 'कृष्ण' ही 'कृष्ण' कहती है।

चन्द्रा०—हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे ! प्यारे अकेले छोड़के कहाँ चले गए ? नाथ ! ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह वन इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को ? हा !

जो पै ऐसिहि करन रही।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम रस की बात कही ॥
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही।
सो उलटी कीनी बिधिना ने कछू नाहि निबही ॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही।
'हरिचन्द' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहि जात कही ॥

(रोती है)

बन०—(आँखों में आँसू भरके) प्यारी ! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है, देख तो यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी।

चन्द्रा०—ये कौन हैं ?

बन०—(वर्षा को दिखाकर) यह मेरी सखी वर्षा है।

चन्द्रा०—यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनन्द का घन कहाँ है ? हा ! मेरे प्यारे ! प्यारे कहाँ बरस रहे हो ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

बदी थी—स्वीकार किया था। **हेतु**—लिए। **विधिना**—ब्रह्मा। **निबही**—निर्वाह हुआ। **बिसारि**—भूल कर। **अनत**—अन्यत्र; दूसरी जगह। **आनंद का घन**—आनंद का बादल; श्री कृष्ण। **गरजना इधर और बरसना और कहीं**—मैं तड़पती तो यहाँ हूँ और तुम बरसते और कहीं हो ?

सारांश—चन्द्रावली विरहोन्मत्ता बन गई है। वह श्री कृष्ण को संबोधित करके कहती है, कि यदि ऐसी ही कठोरता दिखानी थी, तो पहले प्रेम की बातें क्यों की ? मैं तो समझती थी, कि जीवन प्रेमानंद में ही बीत जायगा; पर विधाता ने उल्टा कर दिया ! मुझे भूल कर अब तुम दूसरी ही चाल चलने लगे ! बनदेवी उसे सान्त्वना देती है, और अपनी सखी 'वर्षा' का उससे परिचय कराती है। वर्षा का नाम उसके हृदय में 'आनन्द घन' का प्रेम बन कर उमड़ पड़ता है।

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत
आँखिन को कबौं आइ दिखाइए।
चातक सी मरैं प्यासीं परीं
इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौ प्याइए॥
पीत पटै बिजुरी से कबौं
'हरिचन्द जू' धाइ इतै चमकाइए।
इतहू कबौं आइकै आनँद के घन
नेह को मेह पिया बरसाइए॥

प्यारे! चाहे गरजो चाहे लरजो, इन चातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया; प्यारे! तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के माँगने पर नदी-नद भर देते हो तो चातक के इस छोटे चंचुपुट भरने में कौन श्रम है; क्योंकि प्यारे हम दूसरे पच्छी नहीं हैं कि किसी भाँति प्यास बुझा लेंगे। हमारे तो हे श्याम घन! तुम्हीं अवलम्ब हौ; हा!

चातक—पपीहा। **पानिप**—पानी। **रूप-सुधा**—रूप का अमृत। **पीत पटै**—पीतांबर। **चाहे गरजो, चाहे लरजो**—चन्द्रावली को श्री कृष्ण के गरजने-लरजने की कुछ भी चिंता नहीं है। उसके मन में दृढ़ रूप से उनकी अंतिम कृपा का विश्वास है। उसका प्रेम हार्दिक प्रेम है। यहाँ पुष्टि मार्ग की विश्वास वादिनी भक्ति का पोषण किया गया है। **करुणा**—दया। **लरजना**—काँपना। **श्याम घन**—श्री कृष्ण; काले बादल।

सारांश—चन्द्रावली प्रेमावेग में कहती है, अपनी श्याम मूर्ति इन आंखों को दिखलाया कीजिए। मेरी आखें ठीक चातक की ही भांति प्यासी है। इन्हे सुधा के समान अपनी सुन्दरता का जल पिला जाया कीजिए। कभी कभी इधर आकर बिजली के समान चमकते हुए पीतांबर भी फहरा जाया कीजिए। इतना ही नहीं, कभी कभी स्नेह की वर्षा भी कर जाया कीजिए; क्योंकि यह आँखें चातक सी किसी और स्थान का जल पान तो करेंगी नहीं! तुम दयालु हो। अपनी दया से नदियों और नदों को जल से भर देते हो! मेरी आंखों के चातक की चोंच तो बहुत छोटी है। उसे भरने में तुम्हें अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा।

(नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित होकर देखती हैं)

बन०—सखी, देखि तौ कछू इनको हू सुन कछू इनकी हू लाज कर। अरी, यह तो नई आई हैं ये कहा कहैंगी ?

संध्या—सखी, यह कहा कहै है हम तौ याको प्रेम देखि बिन मोल की दासी होय रही हैं और तू पंडिताइन बनिकै ज्ञान छाँटि रही है।

चन्द्रा०—प्यारे! देखो ये सब हँसतो हैं—तो हँसें, तुम आओ, कहाँ बन में छिपे हो? तुम मुँह दिखलाओ, इनको हँसने दो।

धारन दीजिए धीर हिए कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए।
मारन दीजिए लाज सबै 'हरिचन्द' कलंक पसारन दीजिए॥
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों सोर मचाइ पुकारन दीजिए।
छाँड़ि संकोचन चन्द-मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए॥

क्योंकि—

ये दुखियाँ सदा रोयो करैं बिधना इनको कबहूँ न दियो सुख।
झूठहीं चार चवाइन के डर देख्यौ कियो उनहीं को लिये रुख॥
छाँड़्यौ सबै 'हरिचन्द' तऊ न गयो जिय सों यह हाय महा दुख।
प्रान बचैं केहि भाँतिन सों तरसैं जब दूर सो देखिबे कों मुख॥

(रोती है)

बन०—(आँसू अपने आँचल से पोंछकर) तौ ये यहाँ नाँय रहिबे की, सखी! एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जाँय तब जो चाहियो सो करियो।

चन्द्रा०—अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारो कछू सिस्टाचार न कियो। (नेत्रों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर) सखी! मोहि छमा करियो और जानियो कि जहाँ मेरी बहुत सखो हैं उनमैं एक ऐसी कुलच्छिनी हू है।

पंडिताइन—ज्ञानी। **कुलकानि**—कुल की मर्यादा। **पसारना**—फैलना। **चार चवाइनि**—गुप्त रूप से निन्दा करने वाले।

सारांश—चन्द्रावली साश्रु नयन हो उठती है। तीनों उसकी दशा को देखकर विस्मित हो जाती है। संध्या चन्द्रावली के प्रणय को देखकर विस्मृत हो जाती है। चन्द्रावली पुनः कहती है, चाहे मेरी कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, पर मैं सम्पूर्ण मर्यादाओं को तोड़कर अब श्री कृष्ण को जी भर कर देखूँगी। मेरी आखें सदा रोया करती हैं। लोक लाज के भय से मैंने अब तक श्री कृष्ण को भली भांत नहीं देखा। पर यदि प्राणों की रक्षा करनी है तो मान-मर्यादा की जंजीर को तोड़कर श्री कृष्ण को देखना ही होगा।

चन्द्रावली रोने लगती है। बन देवी कहती है, कि अभी शान्त रहो; हम सब चली जायँ तो रोना। चन्द्रावली तीनों के प्रति शिष्टाचार न दिखाने के कारण उनसे क्षमा माँगती है।

संध्या और वर्षा—नहीं नहीं सखी, तू तो मेरी प्रानन सों हू प्यारी है, सखी हम सच कहैं तेरी सी साँची प्रेमिन एक हू न देखी, ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है।

चन्द्रा० हाँ सखी, और (संध्या को दिखाकर) या सखी को नाम का है?

बनं०—याको नाम संध्या है।

चन्द्रा०—(घबड़ाकर) संध्यावली आई? क्या कुछ संदेसा लाई? कहो, कहो प्राण प्यारे ने क्या कहा? सखी बड़ी देर लगाई? (कुछ ठहर कर) संध्या हुई? संध्या हुई? तो वह बन में आते होंगे। सखियो, चलो झरोखो में बैठ, यहाँ क्यो बैठी हो?

(नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है; चन्द्रमा को देखकर)

अरे अरे वह देखो आया (उँगली से दिखाकर)

देख सखी देख अनमख ऐसो भेख यह,
जाहि पेख तेज रबिहू को मन्द ह्वै गयो।
'हरीचन्द' ताप सब जिय को नसाइ चित
आनँद बढ़ाइ भाइ अति छकि सों छयो॥
ग्वाल-उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा-
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो।
गोरज-समूह घन-पटल उघारि वह
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयो॥

चलो चलो उधर चलो। (उधर दौड़ती हैं)

प्रानन—प्राणो। **साँची**—सच्ची। **अनमेख**—टकटकी लगाकर, निर्निमेष। **पेख**—देखकर। **रवि हू**—सूर्य भी। **ताप**—दुख, गरमी। **छकि सों छयो**—अत्यधिक संतृप्त हो गया है। **उडुगन**—तारों का समूह। **गोरज**—गायों के खुरों के कारण उड़ी हुई धूलि। **पटल**—पर्दा। **निसाकर**—चन्द्रमा।

सारांश—चन्द्रावली के क्षमा माँगने पर संध्या और वर्षा उसके प्रेम की प्रशंसा करती है। 'संध्या' का परिचय प्राप्त करने के बाद चन्द्रावली का प्रेम उद्दीप्त हो उठता है; और वह उन्मत्ता की भाँति कह उठती है, 'संध्या' आगई; तब तो अब प्रियतम भी आते ही होंगे।

नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है। चन्द्रावली चंद्रमा को देखकर कहती है, वह देखो प्रियतम आ गए। उनकी ज्योति को देखकर सूर्य भी लज्जित हो गया है। चित्त का ताप जाता रहा है। आनन्द ही आनन्द छा गया है। चंद्रावली गोपों के कुल को कुमुद, और श्री कृष्ण को चन्द्रमा कहती है। वह कहती है, कि ग्वाल रूपी तारों के बीच में वंशी बजाकर उसने अमृत की वर्षा की, और मान रूपी कमलों को भी लज्जित कर दिया है।

बन०—(हाथ पकड़कर) अरी बावरी भई है, चंद्रमा निकस्यो है कै वह बन सों आवै है ?

चंद्रा०—(घबड़ाकर) का सूरज निकस्यो ? भोर भयो। हाय ! हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसें सही जायगी। अरे भोर भयो, हाय भोर भयो ! सब रात ऐसे ही बीत गई ! हाय फेर वही घर के व्यौहार चलेंगे, फेर वही नहानो, वही खानो, वेई बातें हाय !

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछू
बिधि ने हम सों हठ कौन ठयो ॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय
पिया बिनु कैसे न जीव गयो।
हत-भागिनी आँखिन कों नित के
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो ॥

तो चलो घर चलें। हाय ! हाय ! माँ सों कोन बहाना करूँगी, क्योंकि वह जात ही पूछैगी कि सब रात अकेली बन मैं कहा करती रही। (कुछ ठहर कर) पर प्यारे ! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहाँ रहे ? क्यों देखो तुम हमसे झूठ बोले न ! बड़े झूठे हौ, हा ! अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ।

बावरी—पगली। **तपन**—गरमी। **व्योहार**—काम काज। **विधि**—विधाता। **ठयो**—ठाना। **विहाय**—बीत जाना। **हत भागिनी**—अभागिनी।

सारांश—बनदेवी चंद्रावली का हाथ पकड़कर कहती है, अरे यह तो विक्षिप्त हो गई है निकला तो चन्द्रमा है, पर कहती है वन से श्री कृष्ण आये हैं। चन्द्रावली विरह में वस्तुतः विक्षिप्त बन गई है। वनदेवी की बात का अर्थ वह उल्टा समझती है। उसकी समझ में यह आता है, कि वनदेवी कह रही है, कि सूर्य निकला है। चन्द्रावली आकुल हो उठती है। कहती है अरे अब तो प्रभात हो गया, और प्रियतम के दर्शन हुए नहीं ! फिर वही काम काज, फिर वही खाना-पीना ! न जाने पापी प्राण क्यों रुके हुये हैं ! समझ में नहीं आता, विधाता ने मुझे दुख देने की क्यों प्रतिज्ञा कर ली है ? आज की भी रात बीत गई। प्राण न जाने क्यों नहीं चले गये ? प्रतिदिन के दुखों को देखने के लिए पुनः प्रभात हो गया।

तो चलो घर चलें। पर घर में यह पूछने पर, कि रात कहाँ रही, क्या कहेंगी ! पर यह तो बताओ प्यारे, तुम रात कहाँ रहे ! देखो, झूठ मत बोलना ! बहुत हो चुका, अब तो दर्शन दो।

आओ मेरे झूठन के सिरताज ।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद-जहाज ॥
क्यो परतिज्ञा करी रह्यौ जो ऐसो उलटो काज ।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज ॥

चलो दूर हटो बड़े झूठे हो ।

आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे ।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे ॥
मति परसौ तन रँगे और के रंग अधर तुव जूठे ।
ताहू पै तनिकौ नहि लाजत निरलज अहो अनूठे ॥

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना रात क्या इतनी बढ़ जाती है ?

काम कछू नहि यासो हमै,
सुख मो जहाँ चाहिए रैन बिताइए ।
पै जो करैं बिनती 'हरिचन्द जू'
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए ॥
एक मतो उनसों क्यौ कियो तुम
सोऊ न आवै जो आप न आइए ।
रूसिबे सो पिय प्यारे तिहारे
दिवाकर रूसत है क्यो बताइए ॥

जाओ जाओ मै नहीं बोलती । (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

झूठन के सिरताज—असत्य वादियों मे सर्वश्रेष्ठ । **मिथ्यावाद जहाज**—असत्य भाषण के प्रमुख आधार । **रूठना**—अप्रसन्न होना । **रैन**—रात । **एक मतो...क्यों बताइए**—हे प्रिय, तुमने और सूर्य ने आपस में एक राय क्यों करली है ? जब तुम अप्रसन्न हो जाते हो तो सूर्य भी अप्रसन्न हो जाता है, और नहीं दिखाई पड़ता है । उसके उदित न होने से रात लम्बी हो जाती है, और वियोग का दुख अधिक बढ़ जाता है ।

सारांश—चन्द्रावली कहती है, कि झूठों मे सर्वश्रेष्ठ, अब तो आओ । वास्तव में तुम बड़े छली और कपटी हो । असत्य वादिता के तुम आधार हो । यदि यह उल्टी रीति तुम्हे प्रिय थी, तो पहले क्यों प्रतिज्ञा की ? पहले तो अपनाया, अब छोड़ते हुए लज्जा नहीं लगती ? बड़े झूठे हो ! स्वयं ही प्रतिज्ञा छोड़ दी, और हम पर अप्रसन्न होते हो ? दूर ही रहो । मेरा स्पर्श मत करो ! तुम दूसरों के रंग में रंगे हो । तुम्हारे ओठ जूठे हैं । इतना करने पर भी तुम लज्जित नहीं होते, बड़े धृष्ठ हो । चाहे जहाँ रात बिताइए, मुझसे क्या मतलब ! पर यह तो बताइए, कि सूर्य के साथ मिलकर क्या जाल रच रखा है । जब तुम रूठ जाते हो, तो सूर्य भी रूठकर उदित नहीं होता । फिर तो रात बढ़ जाती है, और कष्ट ही कष्ट होता है ।

तीनों—भई यह तो बावरी सी डोलै, चलो हम सब वृक्ष की छाया में बैठें। (किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती हैं)

चंद्रा०—(घबड़ाई हुई आती है, अंचल, केश इत्यादि खुल जाते हैं) कहाँ गया? कहाँ गया? बोल! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रगट हो, मुँह दिखाओ। भई, बहुत भई, गुदगुदाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवै। (कुछ सोचकर) हा! भगवान् किसी को किसी की कनौड़ी न करै, देखो मुझको इसकी कैसी बातें सहनी पड़ती हैं; आप ही नहीं भी आता उलटा आप ही रूसता है, पर क्या करूँ अब तो फँस गई; अच्छा यों ही सही। ('अहो अहो बन के रूख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय! कोई नहीं बतलाता। अरे, मेरे नित के साथियों, कुछ तो सहाय करो।

अरे पौन सुख-भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यौं न कहौ राधिकारौन सों मौन निवारो॥
अहे भँवर तुम श्याम रंग मोहन ब्रत-धारी।
क्यौं न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी॥
अहे हंस तुम राजबंस सरवर की सोभा।
क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुख के गोभा॥
हे सारस तुम नीकें बिछुरन बेदन जानौ।
तौ क्यों पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानौ॥
हे कोकिल-कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जाय जहँ हरि बड़भागी॥
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय रटत सदाई।
आजहु क्यौं नहिं रटि रटि के पिय लेहु बुलाई॥
अहे भानु तुम तो घर-घर में किरिन प्रकासो।
क्यौं नहिं पियहि मिलाइ हमारो दुख तम नासो॥

गुदगुदाना...रुलाई न आवै—हँसी उतनी ही अच्छी है, जिससे किसी को दुख न मिले। **कनौड़ी**—खरीदी हुई; दबैल। **राधिका रौन**—राधिका रमण; श्री कृष्ण। **मोहन ब्रत-धारी**—श्री कृष्ण की भाँति ही प्रेम का व्रत धारण करने वाले। **मानस**—मन, मान सरोवर। **गोभा**—अंकुर। **बेदन**—पीड़ा।

सारांश—वनदेवी, वर्षा, और सन्ध्या तीनों एक वृक्ष की छाया में बैठ जाती हैं। चन्द्रावली विक्षिप्ता की भाँति आती है, और वायु, भ्रमर, हंस, सारस, कोकिल, पपीहा, और सूर्य इत्यादि को सम्बोधित करके कहती है, कि वे उसकी वियोग-वेदना को उसके प्रियतम तक पहुँचायें; क्योंकि उनमें सन्देश पहुँचाने के लिए अपेक्षित सामर्थ्य है।

हाय !

कोउ नहिं उत्तर देत भए सबही निरमोही।
प्रानपियारे अब बोलौ कहां खोजौं तोही॥

(चंद्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय ! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको ढूँढ़ती थी ? हा ! मेरी इस मूर्खता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा । अरे यह तो चंद्रमा था जो बदलीं की ओट में छिप गया। हा ! यह हत्यारिन बरषा रितु है, मैं तो भूल ही गई थी। इस अँधेरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं; चलूँगी कहाँ और घर कैसे पहुँचूँगी ? प्यारे देखो, जो-जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए। हा ! जो बन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है एक तुम्हीं नहीं हो। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहाँ चले गए ? नाथ ! आँखें बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप-सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे ! वेनी की लट बँध गई है इन्हें कब सुलझाओगे ? (रोती है) नाथ, इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछने वाला भी नहीं है। हा ! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती। अरे बिधिना ! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुनके चौंक उटती थी और धीरज धरके कहती थी कि कभी तो दिन फिरेंगे सो अच्छे दिन फिरे ! प्यारे ! बस बहुत भई अब नहीं सही जाती। मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ। हाय ! जी भर आँखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता। मिलना दूर रहे, मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले

ओट—आड़। **हत्यारिन वर्षा रितु**—वर्षा ऋतु में वियोगियों की वेदना अधिक बढ़ जाती है। इसलिये वह वियोगियों के लिये प्राण हन्ता होती हैं। **सुहावने**—सुन्दर। **गत**—दशा। **उमाह**—उमंग।

सारांश—जब चन्द्रमा बादलों की ओट में छिप जाता है, तब चन्द्रावली को अपनी भूल ज्ञात होती है। वह भूल पर पश्चात्ताप करती है—उसने चन्द्रमा को श्री कृष्ण समझ लिया था। उसे ध्यान ही न था, कि यह वर्षा ऋतु है। भला उसकी सखियों ने उसकी इस मूर्खता पर अपने मन में क्या सोचा होगा। चारों ओर अँधेरा है! घर जाय तो कैसे जाय। प्रियतम के बिना वर्षा ऋतु अधिक दुख दायिनी हो गई है।

'चन्द्रावली' दुख से अधीर हो उठती है, और साश्रु नयन विलाप करने लगती है।

न लगाया, जब सपने में देखा तभों घबड़ा कर चोंक उठी। हाय ! इन घरवालों और बाहरवालों के पीछे कभी उनसे रो-रेकर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घरवालों और बाहरवालों ! ब्रज को सम्हालो मैं तो अब यहीं...(कंठ गद्‌गद होकर रोने लगती है) हाय रे निठुर ! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता। इस ऋतु में तो परदेसी भी अपने घर आ जाते हैं पर तू न मिला। हा ! मैं इसी दुख को देखने को जीती हूं कि बरषा आवे और तुम न आओ। हाय फेर बरषा आई, फेर पत्ते हरे हुए, फेर कोइल बोली, पर प्यारे तुम न मिले ! हाय ! सब सखियाँ हिंडोले झूलती होंगी, पर मैं किसके संग झूलूँ, क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले मिलेंगे, पर आप भींजकर मुझे बचाने वाला और प्यारी कहनेवाला कौन मिलेगा ? (रोती है) हा ! मैं बड़ी निर्लज्ज हूं। अरे प्रेम ! मैंने प्रेमिन बनकर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूं, इन प्रानों को अब नैं जाने कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे कोई देखो, मेरी छाती वज्र की तो नहीं है कि अब तक......(इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्योंही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियाँ सम्हालती हैं)

(जवनिका गिरती है)

॥ प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त ॥

निठुर—निष्ठुर। **निर्लज्ज**—लज्जाहीन; धृष्ठ।

सारांश—चन्द्रावली वियोग की पीड़ा से कातर होकर विलाप करती है। वर्षा ऋतु के कारण उसकी वियोग-वेदना और भी अधिक बढ़ गई है। वह वियोग से व्याकुल होकर गिरने को होती है, इसी समय वनदेवी, वर्षा और सन्ध्या पहुँचकर उसे सँभाल लेती हैं।

दूसरे अंक के अंतर्गत

अंकावतार

स्थान—बीथी, वृक्ष

(संध्यावली दौड़ी हुई आती है)

संध्या०—राम राम! मैं तो दौरत दौरत हर गई, या ब्रज की गऊ का हैं साँड़ हैं; कैसी एक साथ पूछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापैं वा निपूते सुबल को बुरो होय, और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबन को लहकाय दीनो, अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ि कै न भाजती तौ उनके रपट्टा में कब की आय जाती। देखि आज वा सुबल की कौन गति कराऊँ, बड़ो ढीठ भयो है, प्रानन की हँसी कौन काम की। देखौ तौ आज सोमवार है नंदगाँव में हाट लगी होयगी मैं वहीं जाती, इन सबन ने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो। (घबड़ाकर) अरे आई ये गौवें तो फेर इतैही कूँ अरराई।

(दौड़कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है। चंपकलता आती है)

चंपक०—(पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है, किसी की हो, देखूँ तो इसमें क्या लिखा है? (उठाकर देखती है) राम राम! न जाने किस दुखिया की लिखो है कि आँसुओं से भीजकर ऐसौ चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फटी जाती है। (बड़ी कठिनाई से खोलकर पढ़ती है)

अन्तर्गत—भीतरी; भीतर गया हुआ। **अंकावतार**—देखो, भूमिका। **बीथी**—गली मार्ग। **तापैं**—उस पर। **निपूते**—गाली का शब्द; पुत्र हीन। **सुबल**—एक गोप का नाम। **हाँसी**—हँसी। **लहकाय दीनौ**—वेग के साथ दौड़ा दिया। **रपट्टा**—चपेट। **हाट**—बाजार। **पाती**—चिट्ठी। **इतैही कूँ अरराई**—इधर ही टूट पड़ी।

सारांश—चन्द्रावली संध्यावली के द्वारा श्री कृष्ण के पास पत्र भेजती है। संध्यावली श्री कृष्ण को देने के लिये पत्र लेकर निकलती है; पर मार्ग मे ही गायों की चपेट में पड़ जाती है, और प्राण-रक्षा के लिये उसे भागना पड़ता है। भाग दौड़ मे चिट्ठी गिर पड़ती है, जिसे चंपकलता पाती है। चिट्ठी आँसुओं से सिक्त है। चंपकलता उसे खोल कर पढ़ती है।

"प्यारे !

क्या लिखूँ ! तुम बड़े दुष्ट हौ, चलो, भला सब अपनी वीरता हमीं पर दिखानी थी हाँ ! भला मैंने तो लोक-वेद, अपना-बिराना सब छोड़कर तुम्हें पाया, तुमने हमें छोड़ कर क्या पाया ? और जो धर्म उपदेश करो तो धर्म मे फल होता है, फल से धर्म नहीं होता । निर्लज्ज, लाज भी नहीं आती, मुँह ढँको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो । चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही । जो हो, तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी योंहीं सही, अंत मरना है, मैंने अपनी ओर से खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस ।

"केवल तुम्हारी"

(लंबी साँस लेकर) हा ! बुरा रोग है, न करै कि किसी के सिर बैठे-बिठाए यह चक्र घहराय । इस चिट्ठी के देखने से कलेजा काँपा जाता है । बुरा ! तिसमें स्त्रिया की बड़ी बुरी दशा है, क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोट डालो मुँह से बात न निकले । प्रेम भी इसी का नाम है । राम राम ! उस मुँह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकले । इस व्यथा को मैं जानती हूँ और कोई क्या जानेगा क्योंकि "जाके पाँव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई" । यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसकी ? यह न जान पड़ी (कुछ सोचकर) अहा

लोक वेद, अपना-बिराना—सबसे सम्बन्ध तोड़ लेना । पुष्टि मार्ग की भक्ति का यही मर्म है । **धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता**—धर्माचरण के अनुरूप ही फल प्राप्त होता है । फल के अनुरूप धर्माचरण नही किया जाता । **मुँह ढँको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो**—बड़े धृष्ट हो । तुमसे बोलने की इच्छा न रखने पर भी तुम बोलने के लिये आकुल रहते हो । **चक्र घहराय**—बज्र पड़े; बुरा हो । **कपोत व्रत**—दुख प्रकट किये बिना चुपचाप अत्याचार को सहना । **उस मुँह से जीभ...निकले**—वास्तविक प्रेम का होना । **जाके पाँव...पराई**—जो दुख मे नहीं पड़ा है, उसे दूसरों के कष्टों की अनुभूति नहीं हो सकती ।

सारांश—चंपकलता चिट्ठी को खोलकर पढ़ती है । चिट्ठी में चित्रित 'प्रेम' से लिखने वाली के प्रति उसके मन में सहानुभूति जागृति हो जाती है । वह लिखने वाली का नाम जानने के लिये उत्सुक हो उठती है, और मन ही मन विचार करती है, क्योंकि चिट्ठी पर नाम नहीं लिखा है ।

जानी ! निश्चय यह चंद्रावली ही की चिट्ठी है, क्योंकि अक्षर भी उसी-के से हैं और इस पर चंद्रावलीं का चिह्न भी बना। है हा ? मेरी सखी बुरी फँसी। मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी; अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं। मनुष्य न इधर का होता न उधर का। ससार के सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो, यह पत्र तो मै आप उन्हे जाकर दे आऊँगी और मिलने की भी विनती करूँगी।

(नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से)

हाँ तू सब करेगी।

चंप०—(सुनकर और सोचकर) अरे यह कौन है। (देखकर) न जानै कोऊ बूढ़ी फूस सी डोकरी है। ऐसो न होय कै यह बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै, अब तो पहिलै याहि समझावनो परयो चलूँ। (जाती है)

॥ भेद प्रकाशन नामक अंकावतार ॥

चिह्न—यह चिह्न 'चन्द्रावली' का प्रतीक है। चंपक का संकेत इसी चिह्न की ओर है। **गुप्त प्रीति**—मन ही मन किया जाने वाला प्रेम। **इस प्रीति में कुछ भी लाभ नहीं**—मन ही मन किया जाने वाला मूक प्रेम सांसारिक प्रेम से भिन्न होता है। **बूढ़ी फूस सी डोकरी**—अस्थि पंजर मात्र वाली बूढा। **बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै**—रहस्य को बुरी तरह ९ ९ लकर बना बनाया काम बिगाड दे।

सारांश—पत्र पर बने हुए निशान, और अक्षरों को देखकर चम्पक लता को यह समझने में देर नही लगती कि चिट्ठी चन्द्रावली की है। 'चम्पकलता' चन्द्रावली के गुप्त प्रेम पर मन ही मन विचार करती है। उसके प्रेम को देखकर मन ही मन सहानुभूति भी जागृत हो जाती है। वह सहानुभूतिही के कारण उसकी चिट्ठी श्री कृष्ण के पास पहुँचा देने का विचार करती है। इसी समय नेपथ्य मे एक बूढ़ा का स्वर सुनाई पडता है। चपकलता को मन में यह संदेह होता है, कि कहीं बूढ़ा पर चिट्ठी का रहस्य प्रगट न हो गया हो; और कहीं वह काम बिगाड़ न दे। अतः पहले वह उसी को समझाने का विचार करती है।

तीसरा अंक

स्थान—तालाब के पास एक बगीचा

(समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाए हुए)

(झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर-उधर फिरती हैं)

(चंद्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चंद्रकांता, वल्लभा, श्यामला, भामा झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिए घूमती हैं।)

कामिनी—सखी, देख बरसात भी अब की किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम से चारों ओर से घूम-घूमकर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे हैं। कुल की मरजाद ही पर इन निगोड़ो की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमग जो अंग अंग मे भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलो को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है!

सखी देख...पतिव्रत पाल सकती है—शृङ्गार कालीन नायिकाओं और सखियों का सा वार्तालाप। **काम देव ने...सेना भिजवाई है**—वर्षा काल के दृश्यों से हृदय मे रति की भावना उद्दीप्त हो उठती है। **परे**—पंख। **बग पंगति**—बगलों की पाँति। **निशान**—पताका। **लपलपाती नंगी तलवार**—बिजली की उपमा तलवार से दी जाती है। **करखा**—एक विशेष गान जो युद्ध के समय गाया जाता है। यहाँ भी कामदेव की सेना का युद्ध ही है। करखा गाने वाला भी सेना के अनुरूप ही 'मोर' है। **निगोड़ों**—दुष्टों। **कुल की मरजाद ही पर...चढ़ाई है**—कुल की मर्यादा पर आक्रमण कर दिया है; इनसे लोक-लाज बचानी कठिन है। **मनोरथों से...उंमगा आता है**—हृदय अभिलाषाओं से पूर्ण है। **कौन लाजकी...रख सकती है**—कौन है, जो लाज बचा सकती है।

सारांश—वर्षा के दिन है। चारों ओर वर्षा का मनोरम दृश्य छाया हुआ है। बगीचों में झूला पड़ा है। 'चन्द्रावली' अपनी कुछ सखियों के साथ उद्यान में एक स्थान पर बैठी है। कुछ झूला झूलती है, और कुछ आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़कर घूमती है। कामिनी रीति कालीन ढंग से वर्षा का वर्णन करती है।

माधुरी—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो। (हँसती है)

कामिनी—चल, तुझे हँसने ही की पड़ी है। देख, भूमि चारों ओर हरी हरी हो रही है। नदी-नाले बावली-तालाब सब भर गए। पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगुनूँ पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करार धमाधम टूटकर गिरते हैं। सर्प निकल-निकल कर अशरण से इधर-उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेसी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े-पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय-काल ही आया है।

माधुरी—छोटा क्यों बड़ा प्रलयकाल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ रहा है। लाज के बड़े-बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियों के हिसाब से तो संसार डूबा ही है, तो प्रलय ही ठहरा।

कामिनी—पर तुझको तो बटेकृष्ण का अवलंब है न, फिर तुझे क्या, भांडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी, गए हम—

माधुरी—और चन्द्रावली ?

कामिनी—हाँ, चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई-बीती है, उसमें भी अब तो पहरे में है, नजर बन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या—

कामिनी—कामवती स्त्री। **पर समेटे**—पंख समेटे हुए। **सकपके से**—चकित। **वीर बहूटी**—लाल रंग का एक कीड़ा, जो वर्षा के दिनों में पृथ्वी पर रेंगता हुआ दिखाई पड़ता है। **पारी-पारी**—बारी बारी। **करारे**—नदियों के किनारे का वह भाग, जो दोनों ओर रहता है, और कटाव के कारण बनता है। **वियोगियों को तो... आया है**—वर्षा काल में वियोग अधिक उद्दीप्त हो उठता है। इस लिए वियोगियों को वर्षा काल में अधिक वेदना होती है। **लाज के...हो चुके**—वर्षा के कारण 'शृङ्गार' उद्दीप्त हो उठा है, जिससे बड़ी-बड़ी लज्जा वनिता भी 'लाज' खो चुकी हैं। **वियोगियों के... प्रलय ही ठहरा**—इस वर्षा-काल में वियोगियों के लिए दुख ही दुख है; इसलिए प्रलय ही है। **बटे कृष्ण**—बट वाले श्री कृष्ण, श्री कृष्ण की मूर्ति। **भाँडीर**—ब्रज का एक विशेष वन।

सारांश—कामिनी वर्षा के दृश्यों का चित्रण करती है। उसकी कल्पनाओं, और उत्प्रेक्षाओं में माधुरी भी सहयोग प्रदान करती है। 'चन्द्रावली' की भी प्रसङ्ग वश चर्चा चलती है। 'चंद्रावली' की चर्चा चलने पर कामिनी कहती है, कि वह तो नजर बन्द है। श्री कृष्ण को देख भी नहीं पाती।

माधुरी—जान दे नित्य का झंखना। देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आँचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

कामिनी—सखी वसंत का ठंढा पवन और सरद की चाँदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली-काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा।

माधुरी—तिसमें तू तो कामिनी ठहरी, तू बचना क्या जाने।

कामिनी—चल ठठोलिन। तेरी आँखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भारी है, इसीसे किसी को नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े।

माधुरी—बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूँ।

कामिनी—चल तू रुई है क्या कि न उबल पड़ेगी। स्त्री की बिसात ही कितनी बड़े-बड़े जोगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई जोगी होने हा पर मन-ही मन पछताते हैं, कोई जटा पटककर हाय-हाय चिल्लाते हैं, और बहुतेरे तूमड़ी तोड़-तोड़कर जोगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधुरी—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुँकवाकर तूमड़ी तोड़वा ले।

कामिनी—चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी, यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे हो हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किए

झंखना—रोना-धोना, भींखना। **पुरवैया**—पूर्व से आने वाली हवा। **लरजने लगी**—काँपने लगी। **सरद**—शरद ऋतु। **एकतार**—न टूटने वाला; लगातार। **झमाका**—वह शब्द जो पानी बरसने के समय होता है। **ठठोलिन**—हँसी दिल्लगी करने वाली। **खुमारी**—नशा। **थोड़े में बहुत उबल पड़ना**—कुछ ही कारण उपस्थित होने पर संयम खोकर उत्तेजित हो जाना। **बिसात**—अस्तित्व, हैसियत। **तू भी किसी सिद्ध तोड़...वाले**—यदि वर्षा में शृङ्गार के कारण बड़े-बड़े योगियों का भी ध्यान छूट जाता है, तो तू ही क्यों रुका है? किसी से दीक्षा लेकर उन्हीं की भांति होकर क्यों नहीं तू भी अपना मनोरथ पूर्ण कर लेती। **पीर**—व्यथा।

सारांश—माधुरी और कामिनी में वर्षा के सम्बन्ध में बातचीत होती है। कामिनी वर्षा की कामोद्दीपक प्रकृति का चित्रण करती है। माधुरी उसके चित्रण पर व्यंग्य करती है; कामिनी उसका उत्तर देती हुई कहती है कि तू नहीं जान सकती, कि वर्षा में प्रेम की पीर कितनी बढ़ जाती है।

देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझे। इस आनंद की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभावाला और सहज काम जगानेवाला मालूम पड़ता है।

माधुरी—कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेर-फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

(नेपथ्य में बारबार मोर कूकते हैं)

कामिनी—हाय-हाय ! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोरकर चलना यह दो बातें बड़ी कठिन हैं। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग-रंग के कपड़े पहिने ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों, और मैदानो में गलबाही डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हँसते हैं, हँसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं।

माधुरी—और तेरो न कोई पानी बचानेवाला, न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे डयौढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ेहीगा नहीं।

कामिनी—चल लुच्चिन ! जाके पायँ न भई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई।

(बात करती करती पेड़ की आड़ में चली जाती है)

काम जगाने वाला—काम की इच्छा पैदा करने वाला। **छेड़ना**—तङ्ग करना। **कुलाहल**—शोर गुल। **दई मारों का कूकना**—दादुरों, मोरो, और पपीहों की आवाज के लिए है। रीति कालीन परंपरा के आधार पर वर्षा का वर्णन किया गया है। **और तेरो न...बढ़े हीगा नहीं**—पर तू तो अकेली है। इसलिए तेरा कथन तेरे लिए व्यर्थ है।

सारांश—कामिनी श्रृङ्गार भावनाओं से पूर्ण वर्षा का पुनः पुनः चित्रण करती है। माधुरी इस ढङ्ग से उसका उत्तर देती है, कि कामिनी की वर्षा विषयक बात का विस्तार होता जाता है। कामिनी रीति कालीन शैली पर वर्षा का चित्रांकन करती है। माधुरी भी व्यंग्य करने से नहीं रुकती। कामिनी प्यार के स्वर में उसे डाँटती है, और दोनों परस्पर वार्तालाप करती हुई एक वृक्ष की ओट में चली जाती हैं।

माधवी—(चंद्रावली से) सखी, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचंद्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटे सगबगी होकर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गए हैं। भीगने से मुख का पान और काजल सबकी एक विचित्र शोभा हो गई है।

चंद्रा०—क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

का० मं०—सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसा समा बँधा है, वैसी ही झूलनेवाली हैं। झूलने में रंग-रंग की साड़ी की अर्द्ध-चंद्राकार रेखा इंद्रधनुष की छबि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठंढी-ठंढी हवा खा रही है, कोई गाँती बाँधे लाँग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है, कोई डरकर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है, पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माधवी—हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में प्रीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्त्ति भी झूल रही हैं। सखी, आज साँवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख बिजुली की चमक में उसकी मुखछबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार-बार घूँघट उलट देता है। देख

श्यामला—श्री कृष्ण। **चूनरी**—बुंदी दार रंगीन ओढ़नी। **सग बगी**—भीगी हुई। **अर्द्ध चन्द्राकार**—अर्ध चद्रमा की शक्ल की भाँति। **गाती**—गले में लिपेट कर बाँधा जाने वाला वस्त्र, गाती। **पेंग मारना**—झूले को इधर से उधर वेग पूर्वक ले जाने का एक विशेष ढंग **नैनों में पिया की··रही है**—नेत्रों में प्यारे का निवास हैं

सारांश—कामिनी और माधुरी वृक्ष की ओट में चली जाती हैं। वे दोनों ही पानी में भीगी हुई हैं। पानी में भींगने से उनकी शोभा अपूर्व हो गई है। माधवी और चन्द्रावली की दृष्टि उन पर जाती है। दोनों परस्पर उनकी शोभा के संबन्ध में वार्तालाप करती हैं। उधर कामिनी और मधुरी झूले पर झूलती हुई सखियों के संबन्ध में वार्तालाप करती हैं। माधवी भी चंद्रावली से झूले पर झूलती हुई सखियों के अनूठे पन पर वार्तालाप करती है।

हूलति हिये में प्रानप्यारे के बिरह-सूल
फूलति उमंगभरी झूलति हिंडोरे पै ।
गावति रिझावति हँसावनि सबन 'हरि-
चंद' चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै ॥
बारि बारि डारौं प्रान हँसनि मुरनि बत-
रान मुंह पान कजरारे दृग डोरे पै ।
ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै ॥

चंद्रा—सखियो, देखो कैसो अंधेर और गजब है कि या रुत मैं सब अपनो मनोरथ पूरो करै और मेरी यह दुरगत होय ! भलो काहुवै तो दया आवती । (आँखों में आँसू भर लेती है)

माधवी—सखी, तू क्यों उदास होय है । हम सब कहा करै, हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरीं, हमारो का अख्त्यार है तऊ हममैं सो तो कोऊ कछु तोहि नाय कहै ।

का० मं०—भलो सखी, हम याहि कहा कहैंगी ! याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी ।

विलासिनी—हाँ सखी ! हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं । सखी ! बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयँगी । लाठी मारवे सो पानी थोरों हूँ जुदा होयगो, पर अभी जो सुन पावै कि ढिमकी सखी ने चंद्रावलियै अकेलि छोड़ि दीनी तो फेर देखौ तमासा ।

माधवी—हम्बै बीर ! और फेर कामहू तौ हमीं सब बिगारै । अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई । हमारेई तुमारे में सों वहू है । सखी चंद्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी ।

हूलति—दुखदायी होता है । **बिरह-सूल**—विरह का काँटा; या दुख । **घन घोरे पै**—बादल का गंभीर शब्द । **वारना**—निछावर करना । **मुरनि**—मुड़ने का ढंग । **कजरारे**—कज्जल युक्त । **ऊनरी**—कम । **रुत**—ऋतु । **दुरगत**—बुरी दशा । **दया आवती**—दया आती । **नायँ**—नहीं । **छोटी स्वामिनी**—'चन्द्रावली' की ओर संकेत है । **लाठी मारवे सों ·· होयगो**—जिस प्रकार लाठी मारने से पानी अलग नहीं होता, उसी प्रकार चन्द्रावली और स्वामिनी जू की अभिन्नता है । **ढिमकी**—अमुक । **हम्बै बीर**—हाँ सखी ।

सारांश—माधवी झूले के दृश्य का चित्रांकन करती है । हृदय में तो है वियोग का दुःख पर फिर भी हिंडोले पर झूल रही है । बादल गरज रहे है, किन्तु फिर भी उत्साह के साथ गाकर सब को रिझाती हैं । उनकी हँसी, उनका मुड़ना, उनके मुख की पान की लाली और उनकी आँखों की रेखायें—सब विचित्र हैं । उनके गोरे मुख पर चुनरी कैसी शोभा दे रही है, पर चन्द्रावली की दशा तो कुछ और ही है, वह अपनी विरह दशा पर साश्रु नयन हो उठती है। माधरी, माधवी, कामिनी और विलासिनी इत्यादि सखियां चन्द्रावली की उदासीनता के संबंध में वार्तालाप करती हैं, और सहानुभूति प्रगट करती हैं ।

चंद्रा—(आप ही आप) हाय ! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते। प्यारे, फिर यह शरीर कहाँ और हम-तुम कहाँ ? प्यारे, यह संजोग हमको तो अब की ही बना है, फिर यह बातें दुर्लभ हो जायँगी। हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किसको सुनाऊँ और अपनी उमंगें कैसे निकालूँ ! प्यारे, रात छोटी है और स्वाँग बहुत हैं। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय ! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात-दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछनेवाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय ! मैं तो अपने-पराए सब से बुरी बनकर बेकाम हो गई। सब को छोड़कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की। हाय ! मै किसकी होके रहूँ, मैं किसका मुँह देखकर जिऊँ। प्यारे, मेरे पीछे कोई ऐसा चाहनेवाला न मिलेगा। प्यारे, फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे। हा ! तुमने विश्वासघात किया। प्यारे, तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलेगी। हमारा तो कपोत-व्रत है। हाय स्नेह लगाकर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला ! हाय ! यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह ! खूब निबाह किया। बधिक भी बधकर सुध लेता है, पर तुमने न सुध ली। हाय !

रात छोटी है, और स्वाँग बहुत है—जीवन की रात बहुत छोटी है, और हृदय की उमंगें तथा कामनाएँ अधिक है। आशा नहीं है, कि सभी कामनाओं की पूर्ति इस जीवन में हो जाय। **जी**—हृदय, मन। **अपने पराये ·· बे काम हो गई**—सांसारिक सम्बधों की सीमा को पार कर चुकी हूं। **सब को छोड़कर···यह गतिकी**—सबका परित्याग करके तुम्हारी शरण में आई किन्तु तुमने भी कृपा न की। **दीया लेकर मुझको खो जोगे**—मेरे लिए पाश्चात्ताप प्रगट करोगे और मेरी खोज करोगे। **दगा देते···कहलाते हो**—देते तो हो धोखा, पर बनते हो सज्जन, यह तुम्हे शोभा नहीं देता। **बकरा जान···स्वाद न मिला**—प्राणोत्सर्ग करने पर भी जब कोई कृतज्ञता प्रगट न करे।

सारांश—'चन्द्रावाली विरह में अधीर हो उठती है। वह वर्षा, और सखियों को 'हिन्दोल' पर झूलती हुई देखकर अधिक व्याकुल हो जाती है, और अपने ही आप प्रेम संबधी अलाप करने लगती है। अपने मन की उमंगों की बात कहती है, श्री कृष्ण को उलाहने देती है और कुछ खरी-खोटी भी सुना जाती है।

एक बेर तो आकर अंक में लगा जाओ। प्यारे, जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोएगा। हाय! संसार छोड़ा भी नहीं जाता! सब दुःख सहती हूँ, पर इसी में फँसी पड़ी हूँ। हाय नाथ! चारों ओर से जकड़ कर ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है। प्यारे, यों ही रोते दिन बीतेंगे। नाथ! यह हौंस मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे, प्रगट होकर संसार का मुँह क्यों नहीं बंद करते और क्यों शंकाद्वार खुला रखते हो? प्यारे, सब दीनदयालुता कहाँ गई! प्यारे, जल्दी इस संसार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे जैसी हैं, तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहाँ इतने गुन सीखे वहाँ प्रीति निबाहना क्यों न सीखा? हाय! मँझधार में डुबाकर ऊपर से उतराई माँगते हो, प्यारे सो भी दे चुकी, अब तो पार लगाओ। प्यारे, सबकी हद होती है। हाय! हम तड़पें और तुम तमाशा देखो। जन कुटुम्ब से छुड़ाकर यों छितर-बितर करके बेकामकर देना यह कौन बात है। हाय! सबकी आँखों में हलकी हो गई। जहाँ जाओ वहाँ दुर दुर, उस पर यह गति! हाय! 'भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी तें मौंड़ी करी, कौड़ी करी हीरा ते, कनौड़ी करी कुल ते।' तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूँगी। और क्या कहूँ, बस आप आप ही हो, देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूँगी—झूठे, निर्दय, निर्घृण, निर्दय हृदय कपाट' बखेड़िये और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं, भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके! किसने बकाया था! कूद-कूदकर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी? झूठे! झूठे! झूठे!!!!

अंक—गोद। **हौस**—लालसा। **शंका द्वार**—संदेह का दरवाजा। चन्द्रावली कहती है, कि मुझे लोगों ने कलंकित कर रक्खा है; अतः मुझे ग्रहण करके सन्देह को दूर करदो। **अपने कनौडे मत... बनाओ**—मैं केवल तुम्हारी ही कृपा की याचिका हूँ। **मँझधार में—माँनते हो**—सहायता न लेकर दुख देते हो, मिलते तो हो नहीं, पीडा अधिक देते हो **सबकी आँखों में हलकी हो गई**—मेरा सभी लोग अपमान करते है। **भमिनी**—स्त्री। **भौंड़ी**—बुरी, भद्दी। **मौंड़ी**—मान न करने वाली, सीधी लड़की। **कौड़ी करी हीरा तें**—अपने हीरा के समान अमूल्य जीवन को कौडी की भांति तुच्छ बना लिया है। **कनौड़ी करी कुलते**—कुल मे भीतू भिखारिणी बन गई; 'कुल' की मर्यादा भी खो दी। **ममवाक्य**—चुटीला वाक्य, जिससे दुख पहुँचे। **निर्दय, निघृण**—शब्द अपमान सूचक है; बार वास्तव मे श्री कृष्ण के लिये गुण वाचक हैं। दोष रहित, मोह ममता रहित, सर्व गुण सम्पन्न, और भक्त वत्सल। **निर्घृण**—जिसे बुरी वस्तुओं से घृणा हो। **निर्दय हृदय-कपाट**—जो अपना हृदय कपाट खोलने में अधिक कठोर हो।

सरांश—चन्द्रावली विरह से कातर होकर विलाप करती है। श्री कृष्ण को उनकी अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण मिलती है। उनकी दया और कृपा की याचना करती है; और व्यंग्यपूर्ण शब्दों से अपना प्रेम प्रगट करती है।

झूठे ही नहीं वरंच विश्वास घातक ! क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा-उठाकर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुखी देखें आपको कुछ घृणा तो होती ही नहीं । हाय हाय कैसे-कैसे दुखी लोग हैं—और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी । चाहे आपके वास्ते दुखी हो, चाहे अपने ससार के दुःख से; आपको दोनों उल्लू फँसे हैं । इसी से तो "निर्दय हृदय कपाट" यह नाम है । भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते बस चैन था, केवल आनन्द था, फिर क्यों यह विषमय संसार किया । बखेड़िये ! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की । नाम बिके, लोग झूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुँह झूठे बनें, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता ! बेशरमी हो तो इतनी तो हो । क्या कहना है ! लाज को जूतों मार के पीट-पीट के निकाल दिया है । जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती । जब ऐसे हो तब ऐसे हो ।

छाती ठोंक कर—दृढ़ता पूर्वक विश्वास जमाकर । **बखेड़िये**—झगड़ालू । **हाथ उठा…बिश्वास दिया**—पहले तो शरणागत—रक्षा की घोषणा की, पर अब सुनते ही नहीं । पुष्टि मार्ग का सिद्धांत हैं शरणागत की रक्षा । **जहन्नुम**—नरक । **सब धान बाइस पसेरी**—जहाँ अच्छे बुरे, ऊँच नीच सब एक समान समझे जाते हों । **आपको दोनों उल्लू फँसे हैं**—दोनों ओर से दुख ही दुख है, चाहे पर ब्रह्म में आसक्ति की जाय, या लौकिक वस्तु में । **उपद्रव और जाल**—सृष्टि रचकर उपद्रव क्यों खड़ा किया, और फिर प्रेम का जाल क्यों बनाया ? **विषमय संसार**—अविद्या जनित दुखों से पूर्ण संसार । **इतने बड़े …परले सिर की**—संसार—रूपी विशाल कारखाना चलाते हो, पर झूठ बोलने में तनिक भी लज्जा नहीं करते । **नाम बिके**—खूब नाम चल रहा है । भक्तों और प्रेमियों की बुरी गति हो रही है, और तुम भक्त वत्सल बने हो । **झूठा कहे**—प्रतिज्ञा की, कि भक्तों की रक्षा करेंगे, पर अब सुधि नहीं लेते । इसलिए झूठे कहाते हो । **अपने मारे फिरे**—भक्तों को मार्ग नहीं मिल रहा हैं । **शुद्ध बेहयाई**—पूरी निर्लज्जता । **लाजको…दिया है**—पूरे निर्लज्ज हो । **जिस मुहल्ले…नहीं जाती**—तुम तो निर्लज्ज हो ही, तुम्हारा निवास स्थान भी निर्लज्जता से भरा हुआ है ।

हाय ! एक बेर भी मुँह दिखा दिया होता तो मतवाले मत-वाले बने क्यों लड़लड़कर सिर फोड़ते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकमी बेहया हो, कितनी गाली दूँ, बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो, जाने दो—हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और झूठी हैं। क्यों न हो। जस दूलह तस बनी बराता। पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहेगा, क्योंकि सिपारसो नेति नेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे। पर यह तो कहो कि यह दुःखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहेगा कि कुछ तैं भी होगा, वा न तैं होय। हमको क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय मैं किससे कहती हूँ। कोई सुनने वाला है।

मतवाले·····सिर फोड़ते—यदि एक बार दिखाई पड़ जाते तो विभिन्न धर्मावलंबी तुम्हारे संबन्ध मे पृथक पृथक बातें कहकर आपस मे क्यों झगड़ते ? **जब ऐसे हो, तब ऐसे हो**—इतने निंदनीय होने पर इस प्रकार मोहित करते हो। यदि निंदनीय न होते तो क्या करते ! **हुकमी बेहया**—बेहयाई करने मे चूक न करने वाली। **मूल उपद्रव तुम्हारा है**—तुम्ही इस दुख भरी सृष्टि के कारण हो, मेरे दुखों के कारण भी तुम्ही हो। **इतना और कोई न कहेंगे**—मैने तुम्हारे गुणो का वर्णन अनुपम ढंग से किया है। **सिफारिशी नेति नेति कहेंगे**—शास्त्र और मर्यादा का पालन करने वाले तुम्हे नित्य, नित्य कहते हैं; पर मैंने तो तुम्हारे सच्चे गुणों का वर्णन किया है। **दुखमय पचड़ा**—दुखो से भरा संसार।

सारांश—बिरहावस्था में कातर होकर चन्द्रावली विलाप करती है। उसका विलाप अत्यधिक मर्मयुक्त है।

जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं, नहीं, वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता। नहीं, नहीं मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे करम का दोष है। नाथ, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे, क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो। (रोती है)

माधवी—हाय-हाय सखियो! यह तो रोय रही है।

काम मं०—सखी प्यारी! रोवै मती। सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

माधवी—सखी, मैं तेरे हाथ जोड़ूँ मत रोवै। सखो! हम सबन को जीव भरयो आवै है।

विला०—सखी, जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही प्रियाजी की रिस सहैंगी, पर तोसूँ हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

माधवी—हाय-हाय! यह तो मानै ही नहीं। (आँसू पोंछकर) मेरी प्यारी, मैं हाथ जोड़ूँ हा हा खाऊँ, मानि जा।

काम मं०—सखी यासों मति कछू कहौ। आओ हम सब मिलि कै विचार करैं जासों याको काम होय।

विला०—सखी, हमारे तो प्रान ताई यापैं निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै।

चन्द्रा०—(रोकर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

जंगल में मोर नाचा किसने देखा—मेरे हृदय की पीड़ा को कौन जानता है! **वह सब देखता है**—श्री कृष्ण पर ब्रह्म हैं, इसलिए अंतर्यामी भी हैं और सब कुछ जानते हैं। **मेरे अपराधों की...अपनी ओर देखो**—मेरी बुराइयों की ओर न देखकर अपनी भक्त-वत्सलता की ओर देखो! तुम्हारी भक्त वत्सलता ही सार 'वस्तु' है। **सौंह**—सौगंध। **जीव भरयो आवै है**—हृदय में करुणा का संचार होना! **प्रिया जी**—राधिका जी। **हा हा खाऊँ**—विनती करूँ। **याको**—इसके। **यापैं**—इस पैर।

सारांश—चन्द्रावली विरहावस्था में प्रलाप करती है। उसके मुख से प्रेम की अनेक बातें निकलती हैं, जिनमें प्रेम का सार तत्व है। वह रोने लगती है। उसकी सखियाँ उसे चुप कराती हैं और उसकी सहानुभूति में राधिका जी का क्रोध भी अपने ऊपर लेने को उद्यत हो जाती हैं। उनकी सहानुभूति को देखकर चन्द्रावली उनसे एक मार्ग का अवलंबन करने को कहती है।

माधवी—सखी, क्यों न मानैंगी तू कहै क्यों नहीं।

चंद्रा०—सखी, मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाओ।

माधवी—तो तू अकेली यहाँ का करेगी ?

चंद्रा०—जो मेरी इच्छा होगी।

माधवी—भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूँ सुनैं ?

चन्द्रा०—सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता।

माधवी—तौ का अपनो प्रान देगी। सखी, हम ऐसी भोरी नहीं है कै तोहि अकेली छोड़ जायँगी।

विला०—सखी, तू व्यर्थ प्रान देने को मनोरथ करै है, तेरे प्रान तोहि न छोड़ैंगे। जौ प्रान तोहि छोड़ जायँग तो इनको ऐंसो सुन्दर शरीर फेर कहाँ मिलैगो।

का० मं०—सखी, ऐसी बात हम सूँ मति कहै, और जो कहै सो सो हम करिबे कों तयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपने हू मैं मति करि। जब ताईं हमारे प्रान हैं तब ताईं तोहि न मरन देंयगी। पीछे भलेईं जो होय सो होय।

चन्द्रा०—(रोकर) हाय ! मरने भी नहीं पाती। यह अन्याय !

माधवी—सखी, अन्याय नहीं, यही न्याय है।

का० मं—जान दै माधवी वासों मति कछु पूछै। आओ हम तुम मिलकै सल्लाह करें, कि अब का करनो चाहिए।

भोरी—सीधी। **तोंहि**—तुमको। **सूँ**—से। **जब ताईं**—जब तक। **वासों**-उससे **सल्लाह**—सलाह।

सारांश—'चन्द्रावली' अपनी सखियों से कहती है कि वे सब उसे छोड़ कर चली जायँ। चन्द्रावली की विरह-वेदना अत्यधिक बढ़ गई है। कहा नहीं जा सकता, कि चन्द्रावली एकांत में रहकर आत्म हत्या करती; क्योंकि जब उसके मन मे श्रीकृष्ण जी की कृपा का दृढ़ विश्वास है, तो आत्म हत्या का प्रश्न ही नहीं उठता ! परन्तु उसकी सखियों ने उसके एकांत में रहने का यही अर्थ लगाया, कि वह आत्म हत्या करना चाहती है। उसकी सखियाँ उसे इसी भय से नहीं छोड़तीं। वे स्पष्ट रूप से कहती है, कि इस प्रकार अपने प्राणों का त्याग न कर, यह अन्याय है। 'हाय मरने भी नहीं पाती—में चन्द्रावली की विवशता मूर्तिमान हो उठी है।

विला॰—हाँ माधवी, तू ही चतुर है, तू ही उपाय सोच।

माधवी—सखी, मेरे जी में तौ एक बात आवै। हम तीनि हैं सो तीनि काम बाँटि लें। प्यारीजू के मनाइबे को मेरो जिम्मा। यही काम सबमें कठिन है और तुम दोउन मैं सो एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लालजू सों मिलिबे की कहै।

का॰ मं॰—लालजी सों मैं कहूँगी। मैं विन्नै बहुती लजाऊँगी और जैसे होंयगो वैसे यासों मिलाऊँगी।

माधवी—सखी, वेऊ का करैं। प्रियाजी के डर सों कछू नहीं कर सकैं।

विला॰—सो प्रियाजी को जिम्मा तेरो हई है।

माधवी—हाँ, हाँ, प्रियाजी को जिम्मा मेरो।

विला॰—तौ याके घर को मेरो।

माधवी—भयो, फेर का। सखी काहू बात को सोच मति करै। उठि।

चन्द्रा॰—सखियो! व्यर्थ क्यों यत्न करती हौ। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

माधवी—सखी, हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्यबल सों सब काम करेंगी।

का॰ मं॰—सखी, तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है। जब तक साँसा तब तक आसा।

माधवी॰—तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै।

विला॰—नहीं, खबर कैसे परैगी?

प्यारी जू—राधिका जी। **याके**—इसके। **घर केन सों याकी सफाई करावै**—इसके कुटुम्बियों से इसकी निष्कलंकता को सिद्ध करे। **लालजी**—श्री कृष्ण। **विन्ने**—उन्हें। **वेऊ**—वे भी। **जब तक साँसा, तब तक आसा**—अंतिम काल तक आशा का परित्याग नहीं करना चाहिए। **काहुवै**—किसी को भी।

सारांश—जब चंद्रावली की बिरह वेदना समझाने—बुझाने से शांत नहीं होती, तो सखियाँ आपस मे मिलकर सलाह करती है, और यह निश्चय करती हैं, कि राधिका जी की आज्ञा प्राप्त करके श्री कृष्ण को चंद्रावली से मिलाया जाय। माधवी राधिका जी को प्रसन्न करने का भार लेती है, कामिनि श्री कृष्ण जी को चंद्रावली से मिलने के लिए तैयार करने का काम लेती है, और बिलासिनी उसके घर वालों से मिलने का अपने ऊपर काम लेती है। इस प्रकार तीनों काम बाँटकर चंद्रावली की सहायता करने का निश्चय करती हैं। पर चंद्रावली को संदेह है, कि इस ढंग से काम पूर्ण हो सकेगा!

का०मं०—(चंद्रावली का हाथ पकड़कर) लै सखी, अब उठि। चलि हिंडोरैं झूलि।

माधवी—हाँ सखी, अब तौ अनमनोपन छोड़ि।

चंद्रा०—सखी, छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न झूलूँगी। मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं।

पल-पटुली पैं डोर-प्रेम की लगाय चारु
आसा ही के खंभ दोय गाड़ कै धरत हैं।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भर्‌यो
लोक बदनामी झूमि झालर झरत हैं॥
'हरीचंद' आँसू दृग नीर बरसाइ प्यारे
पिया-गुन-गान सो मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा
बिरह-हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

और सखी, मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा।

माधवी—तौ सखी, तेरी जो प्रसन्नता होय! हम तौ तेरे सुख की गाहक हैं।

चन्द्रा०—हा! इन बादलों को देखकर तो और भी जी दुखी होता है।

देखि घन स्याम घनस्याम की सुरति करि
जिय मैं बिरह घटा घहरि-घहरि उठै।

अनमनोपन—उदासीनता। **मेरे तो नेत्र···करते हैं**—मेरे तो नेत्र स्वयं हिंडोला बने हुए है, जिन पर श्री कृष्ण जी झूला झूलते है। **पल—पटुली**—पलक रूपी झूले का पीढ़ा। **चारु**—सुन्दर। **ललित**—सुन्दर। **झूमि**—झूमकर। **उछाह**—उत्साह। **मलार**—एक विशेषराग। **झोंटन**—पेंग। **घनश्याम**—काले बादल। **घनश्याम**—श्री कृष्ण। **घहरना**—गरजना। 'बादल' के गरजने के घहरना कहते हैं।

सारांश—चंद्रावली की सखियाँ उससे हिंडोला झूलने के लिए कहती हैं, किन्तु चंद्रावली हिंडोरे पर नहीं बैठती। वह कहती है कि उसके नेत्र तो स्वयं हिंडोले बने हुए हैं। आशा के दो खंभे हैं, उसमें बिरह रूपी झूला लटका हुआ है। झूले में पलक की पटुली बँधी है जिसमें प्रेम की रस्सी लगी हुई है। काम का पूर्ण उत्साह झूले का झुमका है, और उसमें लोक—बदनामी की झालर लगी हुई है। आँखों का आँसू वर्षा का जल है। प्रियतम के गुणों का गान ही मलार है, मिलन की इच्छा के पेंग देकर नेत्र बिरह रूपी हिंडोले पर सदा झूला करते हैं। चंद्रावली बादलों को देखकर बिरहोन्मत्ता हो उठती है।

त्यौंही इंद्रधनु बगमाल देखि बनमाल
मोतीलर पी की जय लहरि-लहरि उठै ॥
'हरीचन्द' मोर-पिक-धुनि सुनि बंसीनाद
बाँकी छबि बार बार छहरि-छहरि उठै ।
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत
पट-छोर मेरे हिय फहरि-फहरि उठै ॥

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदायिनी हो रही है ।

माधवी—तौ न दुखदायिनी होयगी । चल उठि घर चलि ।

का० मं० —हाँ, चलि । (सब जाती हैं)

(जवनिका गिरती है)

॥ वर्षा-वियोग-विपत्ति नामक तृतीय अङ्क ॥

बगमाला—बगुलों का समूह । **बनमाला** —वनमाला, जो तुलसी, कुंद, मंदार, परजाता और कमल के फूलों से बनती है । **मोतीलर**—मोतियों की लर । **बाँकी**—सुंदर, अनोखी । **छहरि छहरि**—फैलकर, चारों ओ छितरा कर । श्रीकृष्ण की शोभा की ओर संकेत है । **फहरि-फहरि**—हवा मे उड़कर ।

सारांश—चन्द्रावली 'घनश्याम' को देखकर विरहोन्मत्ता हो उठती है । वह कहती है—"काले बादलों को देखकर मेरे हृदय में श्रीकृष्ण की स्मृति उमड़ पड़ती है, और मन के ऊपर विरह की घटाएँ घिर आती हैं । जब मैं इन्द्र धनुष और बकुलों की पंक्तियों को देखती हूँ, तब मुझे श्री कृष्ण की वनमाला और मोतियों की माला की याद हो जाती है, और मन आनन्द से लहराने लगता है । कोयल और मोर का शब्द वंशी-ध्वनि का स्मरण दिलाता है और उनकी सुन्दर शोभा बार बार मेरे संमुख चित्रित हो जाती है । विद्युत् की चमक से उनके पीताम्बर का स्मरण हो आता है, और मेरा हृदय फड़कने लगता है ।

वर्षा चन्द्रावली के लिये अधिक दुखदायिनी हो उठी है । उसकी सखियाँ उसे उठाती हैं और घर ले जाती हैं ।

चौथा अंक

स्थान-चंद्रावली जी की बैठक

(खिड़की में से यमुनाजी दिखाई पड़ती हैं। पलँग बिछा हुआ, परदे पड़े हुये, इतरदान पानदान इत्यादि सजे हुए)

(जोगिन आती है)

जोगिन—अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरू को ! अरे कोई है इस घर में ? कोई नहीं बोलता। क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूँ ? बैठूँ। क्या चिन्ता है। फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं। उसमें भी हम प्रेम के जोगी, तो अब कुछ गावें।

(बैठकर गाती है)

"कोई एक जोगिन रूप कियें।
भौहैं बंक छकोहैं लोयन चलि-चलि कोयन कान छियें ॥
सोभा लखि मोहत नारी नर बारि फेरि जल सबहिं पियें।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत काँधे बीन लियें" ॥
बनी मनमोहिनी जोगिनियाँ।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बैंदी सोहिनियाँ ॥
मातै नैन लाल रँग डोरे मद बांरे मोहै सबन छलिनियाँ।
हाथ सरंगी लिए बजावत गाय जगावत बिरह-अगिनियाँ ॥

जोगिनी—तपस्विनी। [गेरुआ सारी, गहना सब जनाना पहिने, रंग का साँवला, सिन्दूर का लम्बा टीका बड़ा। बाल खुले हुये। हाथ मे सारंगी लिये हुए। नेत्र लाल। अत्यन्त सुन्दर। जब जब गावेगी सारङ्गी बजाकर गावेगी।] **अलख अलख**—योगियों का अपना शब्द, जिसका अर्थ है अप्रत्यक्ष ईश्वर का स्मरण कर। योगी भिक्षाटन के समय इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। **आदेश आदेश गुरू को**—गुरु की आज्ञा ही मुख्य है। **बंक**—टेढी। **छकौहैं**—प्रेम रस में उन्मत्त। **लोयन**—नेत्र। **कोयन**—नेत्रो का कोना। **कान छियै**—नेत्र इतने बड़े हैं, कि कानो को छूते हैं। **बारि फेरि जल सबहिं पियै**—सभी उस पर अपने को निछावर करते हैं। **नागर**—चतुर। **मन्मथ**—कामदेव। **लियैं**—काफी। **सेली**—योगियों के गले में लिपटी हुई माला। **सोहिनियाँ**—सुन्दर। **मातै**—मतवाले। **विरह अगिनियाँ**—विरह की अग्नि।

सारांश—चन्द्रावली की बैठक में योगिनी का प्रवेश होता है। योगिनी अलख की आवाज लगाती है, और बैठकर गाती है। उसका रूप-एक योगिन. रूप बनाकर आई है। उसको टेढ़ी भौहें हैं। प्रेम से छके हुये नयन है। उसकी आखें कानो को छू रही हैं। उसकी शोभा इतनी अधिक है, कि सब मोहित हो जाते हैं, और उस पर अपने को निछावर कर देते हैं। चतुर कामदेव की ध्वनि जगाती है, और कंधे पर वीणा रखकर गाती है।

योगिन का रूप मन को मोहित करने वाला है। उसके गले में सेली है। तन पर गेरुआ रंगकी साडी है। खुले हुये बाल है। भाल पर बेंदी शोभा दे रही है। मद से उसके नेत्रों की रेखाएँ लाल हैं, जो तरुणियों को मोहित कर लेती है। वह हाथ में सारंगी लेकर बजा रही है और गीत गाकर शरीर में विरह की आग जला रही है।

जोगिन प्रेम की आई ।
बड़े-बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन-मद अलसाई ॥
पूरी प्रीति रीति रस-सानी प्रेमी-जन मन भाई ॥
नेह-नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई ॥
जोगिन आँखिन प्रेम-खुमारी ।
चंचल लोयन-कोयन खुभि रही काजर रेख ढरारी ॥
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उँजयारी ।
हाथ सारङ्गी लिए बजावत प्रेमिन-प्रानपियारी ॥
जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारी घूँघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ॥
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ॥
साँचे ढरी प्रेम की मूरति अँखियाँ निरखि सिराई ।

(नेपथ्य में से पैंजनी की झनकार सुनकर)

अरे कोई आता है । तो मैं छिप रहूँ । चुपचाप सुनूँ । देखूँ यह सब क्या बातें करती हैं ।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

चितवत मद-अलसाई—मद के कारण अलसाई हुई आँखें। **गावत विरह-बधाई**—वियोग का संगीत गाती है। **खुमारी**—नशा। **खुभि रही**—चुभ गई। **ढरारी**—बहने वाली। **बागे**—एक विशेष वस्त्र, जिसे योगी पहनते हैं। **सिराई**—ठंडी हुई।

सारांश—प्रेम की योगिनी आई है। वह दीर्घ नेत्र वाली है। उसके दीर्घ नेत्र कानों को भी छूते हैं। उसकी आँखें मद युक्त होने के कारण अलसाई हुई हैं। वह पूर्ण रूप से प्रेम में सनी हुई है, और प्रेमियों को सुन्दर लगती है। वह प्रेम के नगर में अलख जगाती हुई विरह के गीत गा रही है।

योगिनी की आँखों में प्रेम का नशा है। उसके चंचल नेत्रों के कोनों में काजल की रेखा है जो ढुलक रही है। उसके नेत्रों की रेखाएँ लाल हैं, जो रस से पूर्ण हैं। उसका मुख कान्ति मय है। वह प्रेमियों को प्राणों से अधिक प्रिय है। सारंगी उसके हाथ में है, और वह उसे बजाकर गा रही है।

योगिनी के मुख पर बालों की लटें लटक रही हैं। उसके घुँघराले और काले काले बाल हैं। वह देखने में बहुत अच्छी मालूम होती है। खुले हुए बालों और गेरुए रङ्ग के कपड़ों से उसके शरीर की शोभा दुगुनी ज्ञात होती है। वह ऐसी लगती है, मानों प्रेम की मूर्ति साँचे में ढली हो। उसे देखने से आँखों को सुख प्राप्त होता है।

ललिता—हैं ! अब तक चन्द्रावली नहीं आई। साँझ हो गई, घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर-चकार चला आवै तो क्या हो। (खिड़की की ओर देखकर) अहा ! जमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है। जैसा वर्षा का बीतना और शरद् का आरम्भ होना वैसा हो बृन्दावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की झकोर से जमुनाजी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है। आहा ! जमुनाजी की शोभा तो कुछ कही ही नहीं जाती। इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती वा वह देख ही के क्या करती, उलटा उसका विरह और बढ़ता। (यमुनाजी की ओर देखकर) निस्संदेह इस समय बड़ी ही शोभा है।

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।

तरनि तनूजा—सूर्य की पुत्री। **कूल**—किनारा। **मुकुर**—आइना। **प्रनवत**—प्रणाम करते हैं। **आतप वारन**—गर्मी को दूर करने के लिए।

सारांश—सहसा 'ललिता का प्रवेश होता है। योगिनी 'ललिता' को देखकर ओट में छिप जाती है। ललिता आती है। देखती है, चन्द्रावली नहीं है। उसके घर मे भी कोई नहीं है। वह यमुना जी की ओर देखती है। यमुना जी की अपूर्व शोभा है :—

यमुना के किनारे पर तमाल के वृक्ष हैं, जो पानी में झुके हुये ऐसे लगते हैं; मानों उसके पवित्र जल का स्पर्श कर रहे हों; अथवा जल की आइनें में झुक-झुककर अपनी शोभा देख रहे हों; अथवा पवित्र फल के लोभ से उसे प्रणाम कर रहे हो, अथवा किनारे की गर्मी को दूर करने के लिए आपस में सिमटे हुये हों; अथवा भगवान की सेवा करने के लिए झुके हुए हों। उन वृक्षों को देखने से ही मन और नेत्रों को अधिक सुख प्राप्त होता है।

कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमगे पिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिके कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥
कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै ब्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाईं ।
कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥
तिन पैं जेहि छिन चन्द-जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्ज्वल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कबि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अंबर रहत छबि इकसी नभ तीर की ॥

सैवालन—सिवार। **गोभा**—अंकुर। **उपचार**—सामग्री। **मिस**—बहाना। **सात्विक**—सात्विक भाव। **बगरे**—फैले हुए। **तानतनावति**—तनवे तानती है। **ओभा**—चमक। **अंबर**—आकाश।

सारांश—कही किनारे पर स्वच्छ कमल शोभा दे रहे हैं। कही शैवालों मे कुमुदिनी शोभित है, जो ऐसी लगती है, मानो बहुत से नेत्र धारण करके ब्रज की शोभा देख रही हो, अथवा श्री कृष्ण और राधिका के प्रेम के गुच्छे खिले हों, अथवा जमुना जी अनेक हाथ बढ़ाकर श्री कृष्ण को अपने पास बुला रही हों, अथवा पूजा की सामग्री लेकर प्रिय से मिलने जा रही हो. और मन को मोहित कर रही हों।

अथवा कमलों को अपने प्रियतम के चरणों का उपमान जानकर उन्हे हृदय में धारण किए हो अथवा अनेकों मुख धारण करक भौरो के गुंजार के बहाने प्रिय का स्तुति करती हों, अथवा ब्रज की स्त्रियों के मुख कमल की परछाई हो जो जल में झलक रही हो, अथवा विष्णु के पैरों को छूने के लिए अनेकों लक्ष्मी ब्रज में आगई हो, अथवा सात्विक भाव और प्रेम दोनों ही रूप धारण करके ब्रज में फैले हुए हों अथवा उन्हे लक्ष्मी जी का निवास स्थान जानकर सैकड़ों रूप में उन्हें अपने जल में रखती हों।

पूर्णिमा रात में चंद्रमा की किरणें जब उन पर पड़ती हैं तब किरणें जल में मिलकर आकाश से लेकर पृथ्वी तक एक तनवा तान देती हैं। उस समय उनकी परमोज्वल आभा दर्पाण की तरह मालूम होती है, जिसे देखकर शरीर नेत्र और मन शीतल हो जाते है। और सुख पाते हैं। उस समय की शोभा का वर्णन कोई भी कवि नहीं कर सकता। उस समय आकाश से लेकर नदीं के किनारे तक की शोभा एक सी दृष्टि गोचर होती है।

परत चन्द्र-प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है॥
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत॥
पवन गवन बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥

रास-रमन—रास क्रीड़ा। **पच्छ**—अँधेरा, और उजेला पक्ष। **अविकल**—ज्यों का त्यों।

सारांश—कभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल मे पड़कर चमकता है; और चंचल तरङ्गों से मिलकर नाचता है, जो बहुत ही अच्छा लगता है। उसकी शोभा ऐसी ज्ञात होती है, मानों विष्णु भगवान का दर्शन करने के लिए चन्द्रमा जल में रहता हुआ शोभित हो; अथवा मानों यमुना अपने तरङ्ग रूपी हाथों में आइना लिये हुये शोभित हो; अथवा रास क्रीड़ा के समय जल में भगवान के मुकुट की शोभा झलक रही हो; अथवा जल में निवास करने वाले भगवान की मूर्ति का प्रतिबिम्ब झलक रहा हो।

कै कालिंदी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत॥
कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूं बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत।
कहुँ टत पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तटसोभा सब जिय धरत॥

मज्जत—नहाते है।

वायु के चलने से चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अनेक रूप धारण करता है। इस प्रकार कभी सैंकड़ों चन्द्रमा प्रगट होता है, और कभी छिप जाता है। ऐसा ज्ञात होता है, मानों चन्द्रमा प्रेम से जमुना जी के जल में लोटता फिरता हो; अथवा तरङ्ग रूपी रस्सी पर हिंडोले भूलता हुआ आनन्द में तन्मय हो; अथवा मानों आकाश में किसी बालक की पतङ्ग इधर उधर उड़ती हुई शोभा पा रही हो; अथवा ब्रज की कोई रमणी जल में स्नान करती हुई डोल रही हो।

चन्द्रमा का निकलना और फिर छिप जाना ऐसा ज्ञात होता है, मानो दोनों पक्ष उदय और विलीन हो रहे हों; अथवा मानों नक्षत्रों को ठगने के लिये चंद्रमा प्रगट होकर छिप जाता हो; अथवा मानों यमुनाजी में जितनी लहरें उठती है, उतना ही रूप धारण करके चन्द्रमा उससे मिलने के लिये दौड़ पड़ा हो; अथवा मानों चांदी की बहुत सी चकइयाँ चल रही हों; अथवा मानों जल के फुहारे उठ रहे हों अथवा चन्द्रमा रूपी पहलवान उठक बैठक की कसरत कर रहा हो।

कहीं कल हंस बोल रहे हैं, कहीं कबूतर स्नान कर रहें हैं; कहीं जल कुक्कट दौड़ रहे हैं, कहीं कारंडव उड़ रहे हैं; कहीं चक्रवाक आराम कर रहे हैं, कहीं बक ध्यान मग्न है; कहीं तोता और कोयल आदि जल पी रहे हैं, कहीं भ्रमर गुंजार कर रहें हैं; कहीं कहीं मोर नाच रहे हैं और बहुत से पक्षी शोर मचा रहें हैं। सब जल पीते हैं, नहाते है और सुख देने वाले वाले यमुना जी के किनारे की शोभा को अपने हृदय में धारण करते हैं।

कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्ज्वल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुं बिछाए ।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराए ॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी श्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं व्रज निवास लखि हिय हरसि ॥

(चंद्रावली अचानक आती है)

चंद्रा०—वाह बाहरी बैहना आजु तो बड़ी कबिता करी । कबिताई की मोट की मोट खोलि दीनी । मैं सब छिपें छिपें सुनती थी ।

(दबे पाँव से जोगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है)

ललिता—भलो-भलो बीर, तोहि कबिता सुनिबे की सुधि तौ आई, हमारे इतनोई बहुत है ।

चंद्रा०—(सुनते ही स्मरणपूर्वक लम्बी साँस लेकर)

सखी री क्यों सुधि मोहि दिवाई ।
हौं अपने गृह-कारज भूली भूलि रही बिलमाई ॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौं जिय अकुलाई ।
हौं तबही लौं जगत-काज की जब लौं रहीं भुलाई ॥

ललिता – जल जान दे, दूसरी बात कर ।

जोगिन—(आप ही आप) निस्संदेह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई । नेत्रों में आँसुओं का प्रवाह उमग आया । मुँह सूखकर छोटा सा हो गया । हाय ! एक ही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई । अरे इसकी तो यही गति है—

पाँवड़े—पायंदाज । **कूल**—किनारा । **चिकुरन**—बाल । **सतगुन**—सतोगुण । **मोट की मोट**– गठरी की गठरी; बहुत अधिक ।

सारांश—किनारे पर कहीं कोमल वालुका राशि फैली है; जो ऐसी लगती है, मानों चाँदी की सफेद सुन्दर सीढ़ी झलक रही हो, अथवा मानों प्रियतम के आगमन के उपलक्ष्य में रत्नों का चूर्ण बनाकर यमुना जी ने पाँवड़े बिछाए हों अथवा मानों यमुना जी के श्याम जल रूपी बालों को स्पर्श करती हुई माँग की मोतियाँ हों, अथवा मानो किनारे पर सतोगुण छाये हुए है, जिन्हें देख कर व्रज निवासी आनंदित होते हैं ।

हे सखी तुमने मुझे श्री कृष्ण का स्मरण क्यों दिला दिया ? मैं तो अपने घर के काम काजों में भूली हुई समय काट रही थी । अब तो पुनः वही पहले जैसा मन होता जाता है । मैं अब आकुल होकर मर जाऊँगी । जब तक श्री कृष्ण को भूली हुई हूँ तभी तक मैं जगत के काम की हूं।

ललिता के शोभा वर्णन के साथ ही चंद्रावली आती है । चंद्रावली उसकी कविता की प्रशंसा करती है । योगिनी एक कोने में चुपचाप खड़ी हो जाती है । चन्द्रावली को पुनः श्री कृष्ण का स्मरण हो आता है । वह दुखी हो उठती है । उसकी विरह वेदना को देख कर योगिनी अपने ही आप कहती है कि इसका प्रेम सच्चा है ।

छरी सी छकी सी जड़ भई सी जकी सी घर
हारी सी बिकी सी सो तो सबही घरी रहै ।
बोले तें न बोलै दृग खोलै नाहिं डोलै बैठी
एकटक देखै सो खिलौना सी धरी रहै ॥,
'हरीचन्द' औरो घबरात समुझाएँ हाय
हिचकि-हिचकि रोवै जीवति मरी रहै ।
याद आएँ सखिन रोवावै दुख कहि-कहि
तौ लौं सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै ॥

अब तो मुझसे रहा नहीं जाता । इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं ।

चन्द्रा०—(ललिता की बात सुनी-अनसुनी करके बाएँ अङ्ग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है। (कुछ ठहरकर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अंधा कर देता है । भला वह कहाँ और मै कहाँ—पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवेंगे । (हँसकर),हैं—उनको हमारी इस बखत फिकिर होगी । "मान न मान मै तेरा मेहमान", मन को अपने ही मतलब की सूझती है । "मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम" । (लम्बी साँस लेकर) हा ! देखो प्रेम की गति ! यह कभी आशा नहीं छोड़ती । जिसको आप चाहो वह चाहे झूठमूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होगे । (कलेजे पर हाथ रखकर) रहो रहो, क्यों उमगे आते हो, धीरज धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवेंगे ।

जरदी—पीलापन । **छरी**—छली हुई । **जकी**—चकपकाई हुई । **जीवति मरी रहै**—जीवितावस्था मे मृतक के समान । **मान न मान मैं तेरा मेहमान**—जब बिना बुलाये हुए कोई किसी के यहा जा पहुँचना है । **मेरी पिय···सोहागिन नाम**—प्रियतम तो बात भी नहीं पूछता और कहती है, कि मै सौभाग्यवती हूँ. आदर सम्मान न करने पर भी विश्वास प्रगट करना ।

सारांश—योगिनी चन्द्रावली की प्रेम पीटा से उत्पन्न शारीरिक दशाओं का चित्रण करती है, और कहती है, कि उसका प्रेम वास्ताविक प्रेम है । चन्द्रावली के प्रेम की वास्तविकता को देखकर योगिनी रूप श्री कृष्ण का मन भी चन्द्रावली से मिलने के लिए आकुल हो उठना है । उधर चन्द्रावली के बामाग फड़क उठते हैं । और वह अपने ही आप प्रसन्न होकर बहक में प्रेम की बाते करने लगती हैं ।

जोगिन—(आप ही आप) होगा प्यारी, ऐसा ही होगा। प्यारी मैं तो यहीं हूँ। यह मेरा ही कलेजा है कि अन्तर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। (प्रगट सामने बढ़कर) अलख! अलख!

(दोनों आदर करके बैठाती हैं)

ललिता—हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के दरसन भए।

चंद्रा०—(आप ही आप) न जानें क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

जोगिन—भलो हम अतीतन को दरसन कहा, योंही नित्य ही घर-घर डोलत फिरैं।

ललिता—कहाँ तुम्हारो देस है?
जोगिन—प्रेम नगर पिय गाँव।
ललिता—कहा गुरू कहि बोलहीं?
जोगिन—प्रेमी मेरो नाँव।
ललिता—जोग लियो केहि कारनै?
जोगिन—अपने पिय के काज।
ललिता—मंत्र कौन?
जोगिन—पियनाम इक।
ललिता—कहा तज्यो?
जोगिन—जग-लाज।
ललिता—आसन कित?
जोगिन—जितही रमे।

अतीतन—साधुओं। **केहि कारनै**—किस कारण से। **कित**—कहाँ। **आसन**—स्थान।

सारांश—चन्द्रावली की प्रेम संबंधी बातों को सुनकर श्री कृष्ण रूप योगिनी 'अलख अलख' की आवाज के साथ सामने प्रगट होती है। चन्द्रावली और ललिता दोनों ही उसका आदर करती हैं। योगिनी को देख कर चन्द्रावली के मन में स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होता है। ललिता योगिनी से परिचयात्मक प्रश्न करती है। योगिनी उत्तर में ऐसी बातें कहती है, जिनसे अलौकिकता प्रगट होती है।

ललिता—पंथ कौन ?
जोगिन—अनुराग।
ललिता—साधन कौन ?
जोगिन—पिया-मिलन,
ललिता—गादी कौन ?
जोगिन—सुहाग॥

नैन कहें गुरु मन दियो बिरह सिद्धि उपदेस।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम फिरत देस-परदेस॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय! यह भी कोई बड़ी भारी बियोगिन है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

ललिता—तौ संसार को जोग तो और ही रकम को है और आप को तो पंथ ही दूसरो है। तो भला हम यह पूछें कि का संसार के और जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं ?

जोगिन—यामैं का संदेह है, सुनो। (सारंगी छेड़कर गाती है)

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिर धारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
बिरहागिन धूनी चारों ओर लगाई।
बसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई॥
अँसुअन की सेली गल में लगत सुहाई॥
तन धूर जमी सोइ अङ्ग भभूत रमाई॥

पंथ—मार्ग। **गादी**—गद्दी। **संसार को जोग...दूसरो है**—आपका योग तो संसार से भिन्न है। संसार का योग तो प्रेम है; पर आपके योग में सांसारिक प्रेम के लिये स्थान नहीं दीखता है। **पचि मरत**—परिश्रम करके व्यर्थ परेशान होते हैं। **मुद्रा**—साधुओं के पहनने का छल्ला।

सरांश—योगिनी के अलौकिक उत्तर को सुनकर चन्द्रावली हत प्रभ सी हो जाती है; और उसके महान् वियोग के सम्बन्ध में मन ही मन सोचने लगती है। साथ ही उसके मन में उसके प्रति आकर्षण भी उत्पन्न हो जाना है। ललिता योगिनी से योग के सम्बन्ध में प्रश्न करती है। योगिनी सांसारिक योग को व्यर्थ बताती हुई विरह-योग को ही अद्भुत योग बताती है, और उसकी प्रशंसा करती है।

लट उरझि रहं सोइ लटकाई लट कारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।
गुरु बिरह दियो उपदेस सुनो ब्रजबाला ।
पिय बिछुरन दुख बिछाओ तुम मृगछाला ॥
मन के मनके की जपो पिया की माला ।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला ॥
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना ।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना ॥
सिर सेंदुर देकर चोटी गूंथ बनाना ।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना ॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
है पंथ हमारा नैनों के मत जाना ।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना ॥
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना ।
'हरिचंद' एक प्यारे से नेह बढ़ाना ॥
ऐसे बियोग पर लाख जोग बलिहारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥

लट—लटकते हुए गुच्छेदार बाल। **कारी**—काली। **मनके**—मनिया; माला का दाना। **अचल**—स्थिर; न भंग होने वाली। **साँची**—सच्ची। **बाना**—वेश। **असगुन... कभी चढ़ाना**—योगी लोग शरीर में राख लगाते है। योगिनी उसे अपशकुन समझती है। **तमोल**—पान। **खुमारी**—नशा। **है पंथ...जाना**—नेत्रों का अनुरक्त होना ही हमारा पंथ है। **शिवजी...सिखाना**—अपने विरह योग की श्रेष्ठता को प्रमाणित करता है। उसका विरह योग इतना महान् है, कि वह शिवजी ऐसे महान् योगी को भी शिक्षा देता है।

सारांश—योगिनी अपने विरह-योग की व्याख्या करती है, और उसे सबसे अधिक उच्च बताती है। विरह योग क्या है, वह किस प्रकार पैदा होता है, उसकी स्थितियाँ क्या हैं, और उसका परिणाम क्या होता है—आदि बातों का चित्रण योगिनी करती है।

चंद्रा० – (आप ही आप) हाय-हाय ! इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इसके शब्द का जी पर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है। या मेरा जी ही चोटल हो रहा है। हाय-हाय ! ठीक प्रान-प्यारे की सी इसकी आवाज है। (बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और जी बहलाकर) कुछ इससे और गवाऊँ। (प्रगट) जोगिनजी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ। (कहकर कभी चाव से उसकी ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है)

जोगिन – (मुसकराकर) अच्छा प्यारी ! सुनो। (गाती है)

जोगिन-रूपसुधा की प्यासी।

बिनु पिय मिलें फिरत बन ही बन छाई मुखहि उदासी ॥
भोग छोड़ि धन धाम काम तजि भई प्रेम-बनबासी।
पिय-हित अलख अलख रट लागी पीतम-रूप उपासी ॥
मनमोहन प्यारे तेरे लिये जोगिन बन बन बन छान फिरी।
कोमल से तन पर खाक मली ले जोग स्वाँग सामान फिरी ॥
तेरे दरसन कारन डगर-डगर करती तेरा गुन-गान फिरी।
अब तो सूरत दिखला प्यारे 'हरिचंद' बहुत हैरान फिरी ॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा जाता है। हाय ! 'अब तो सूरत दिखला प्यारे।'

जोगिन—तो अब तुमको भी गाना होगा। यहाँ तो फकीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावें तुम हमारे सामने न गाओगी। (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनेंगे। (प्रगट) हाँ ! देखो हमारी यह पहिली भिक्षा खाली न जाय, हम तो फकीर हैं हमसे कौन लाज है ?

जी को वेधे डालता है—हृदय को विदीर्ण करता है। **सुधा**—अमृत। **उपासी**—भूखी, उपासना करने वाली। **छान फिरी**—ढूँढ़ती फिरी। **कलेजा ऊपर को खिंचना**—अधिक आकुल होना।

सारांश—योगिनी के विरह गीत को सुनकर चन्द्रावली विस्मित हो उठती है। मन ही मन उसके रूप, उसके संगीत, उसके स्वर और उसके आकर्षण पर विचार करती है। उसे योगिनी की आवाज श्री कृष्ण जैसी ही लगती है। वह योगिनी से पुनः गाने को कहती है। योगिनी पुनः विरह का गीत गाती है। गीत मे चन्द्रावली के ही विरह का भाव चित्र है, जिसे योगिनी अपना चित्र कहती है।

चन्द्रावली मन ही मन उस भाव-चित्र से अपनी तुलना करती है, और सादृश्य पाकर आकुल हो उठती है। योगिनी चन्द्रावली से भी संगीत सुनाने के लिए कहती है। पर चन्द्रावली गाए तो किस प्रकार गाए ! वह तो समाकुला है।

चंद्रा०—भला मैं गाना क्या जानूँ। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है, गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहरकर नीची आँख करके) और फिर मुझे संकोच लगता है।

जोगिन—(मुसक्याकर) वाह रे संकोचवाली! भला मुझसे कौन संकोच है? मैं फिर रूठ जाऊँगी जो मेरा कहना न करेगी।

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय-हाय! इसकी कैसी मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है। जरा से झूठे क्रोध से जो इसने भौंहें तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती हैं। हाय! प्राननाथ कहीं तुम्हीं तो योगिन नहीं बन आए हो। (प्रगट) नहीं-नहीं, रूठो मत, मैं क्यों न गाऊँगी। जो भला बुरा आता है सुना दूंगी, पर फिर भी कहती हूँ आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी। ऐ मैं हाथ जोड़ती हूँ मुझे न गवाओ। (हाथ जोड़ती है)

ललिता—वाह, तुझे नए पाहुने की बात अवश्य माननी होगी। ले मैं तेरे हाथ जोड़ हूँ, क्यौं न गावगी। यह तो उससे बहाली बत्ता जो न जानती हो।

चंद्रा०—तो तू ही क्यों नहीं गाती। दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जोगिन—हाँ हाँ, सखी तू ही न पहिले गा। ले मैं सारङ्गी से सुर की आस देती जाती हूँ।

ललिता—यह देखो। जो बोले सो घी को जाय। मुझे क्या, मैं अभी गाती हूं।

सङ्कोच—लज्जा। **पाहुने**—अतिथि। **बहाली बत्ता**—बहाना करना। **मुस्तैद**—तैयार। **आस**—सहारा। **जो बोले सो घी को जाय**—अपनी सुझाई हुई बात का अपने ही सिर पड़ना।

सारांश—पर योगिनी आग्रह करती है, कि चन्द्रावली अवश्य गाए! यदि वह न गायेगी तो योगिनी रूठ जायगी! योगिनी रूठ जायगी इससे चन्द्रावली के प्राणों पर आ पड़ी। योगिनी का बोलना, उसकी भौंहों का तनना! चन्द्रावली को ऐसा ज्ञात होता है, मानों योगिनी के रूप में श्री कृष्ण हैं। फिर भी वह गाने के लिये तैयार नहीं होती। ललिता भी उससे गाने के लिए कहती है। पर चन्द्रावली नहीं गाती। वह ललिता को ही गाने के लिए कहती है। अन्त में ललिता ही गाती है।

(राग बिहाग—गाती है)

अलख गति जुगल पिया-प्यारी की।
को लखि सकै लखत नहिं आवै तेरी गिरिधारी की ॥
बलि बलि बिछुरनि मिलनि हँसनि रूठनि नित ही यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या पर बलिहारी की ॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय ! यहाँ आज न-जाने क्या हो रहा है, मैं कुछ सपना तो नहीं देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूँ। क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है ! अरे यह जोगिन कहीं जादूगर तो नहीं है। (घबड़ानी सी होकर इधर उधर देखती है)

(इसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती और जोगिन हँसती है).

ललिता—क्यों, आप हँसती क्यों हैं ?

जोगिन—नहीं, योंही मैं इसको गीत सुनाया चाहती हूं पर जो यह फिर गाने का करार करे।

चंद्रा०—(घबड़ाकर) हाँ, मैं अवश्य गाऊँगी, आप गाइए।

(फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है)

(जोगिन सारंगी बजाकर गाती है)

अलख गति—जो जानी न जा सके। **पिया प्यारी**—श्री कृष्ण और राधा। यहाँ राधा के स्थान में चन्द्रावली। **रूठनि**—अप्रसन्न होना। **यारीकी**—प्रेम के लगन की। **त्रिभुवन**—तीनों लोक-स्वर्ग, पृथ्वी, और पाताल। **रति**—प्रेम। **गति**—मर्यादा। **मति**—बुद्धि। **करार**—वायदा।

सारांश—ललिता गाती है—"पिया और प्यारी दोनों की बात समझ में नहीं आती। तुम्हारी और गिरिधारी की बातें समझ से परे हैं। दोनों ही परस्पर एक दूसरे की बलैया लेते हैं, आपस में मिलते हैं, बिछुरते हैं, रूठते हैं, और हँसते हैं। दोनों की प्रेम की ऐसी ही निराली बातें हैं। तीनों लोकों का प्रेम, सौंदर्य, मर्यादा, और बुद्धि सब कुछ इन पर निछावर है।

ललिता के गीत को सुनकर चन्द्रावली विस्मय में पड़ जाती है। सोचने लगती है, यह योगिनी कहीं श्री कृष्ण जादूगर ही तो नहीं हैं ! वह आकुल होकर इधर-उधर देखने लगती है। उसकी दशा देखकर योगिनी हँस देती है। ललिता योगिनी से हँसने का कारण पूछती है। योगिनी कहती है, कि मैं इसे और भी गीत सुनाना चाहती हूँ; लेकिन यह भी सुनाए तो ! चन्द्रावली कह उठती है—मैं अवश्य गाऊँगी ! आप अवश्य गाइए ! और वह ध्यानावस्थित हो जाती है।

(संकरा)

तू केहि चितवति चकित मृगी सी ?
केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयो क्यौं अकुलाति लखाति ठगी सी ॥
तनं सुधि करु उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी ।
उतरु न देत जकी सी बैठी मद पीयो कै रैन जगी सी ॥
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी ।
भूलि बैखरी मृगछौनी ज्यो निज दल तजि कहुं दूर भगी सी ॥
करति न लाज हाट घर बर की कुलमरजादा जाति जगी सी ॥
'हरीचंद' ऐसिहि उरझी तौ क्यौं नहिं डोलत संग लगी सी ॥
तू केहि चितवति चकित मृगीसी ?

चंद्रा०—(उन्माद से) डोलूँगी-डोलूँगी संग लगी (स्मरण करके लजाकर आप ही आप) हाय हाय ! मुझे क्या हो गया है। मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आए गए भीतर बाहर वाले सबके सामने कुछ बक उठती हूँ। भला यह एक दिन के लिए आई बिचारी जोगिन क्या कहेगी ! तो भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रखी नहीं तो मैं—राम-राम-नहीं-नहीं, मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा। अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है। उस पर जले पर नोन। हाय नाथ ! हम अपने उन अनुभवसिद्ध अनुरागों और बढ़े हुए मनोरथो को किस को सुनावें जो काव्य के एक-एक तुक और संगीत की एक-एक तान से लाख-लाखगुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस आर

चितवति—देखती है। **चकित**—चकराई हुई। **अकुलाति**—व्याकुल होती है। **ठगी**—जिसका कुछ छीन लिया गया है। **खगी**—जो भूली हुई हो। **जकी**—स्तब्ध। **मद**—शराब। **बैखरी**—बोलने की शक्ति। **मृग-छौनी**—हरिण की बच्ची। **तन्मय**—लीन। **जले पर नोन**—दुख में सहानुभूति दिखाने के स्थान पर दुख का और सामान पैदा करना; पीड़ा में पीड़ा को बढ़ाने वाली वस्तुएँ लाना। विरह पीड़ित चंद्रावली के लिए साहित्य और संगीत का योग ऐसा ही है। **अनुभव सिद्ध अनुरागों**—अनुभव के द्वारा सिद्ध किए हुए प्रेम अर्थात् चंद्रावली ने स्वयं प्रेम का अनुभव किया है।

सारांश—योगिनी गाती है। वह अपने गीत में चंद्रावली से उसके प्रेम, उसके प्रेमोन्माद और उसकी विक्षिप्तता के सम्बन्ध में प्रश्न करती है। उसके गीत को सुनकर चंद्रावली की विरह वेदना बढ़ जाती है, और वह अपने सम्बन्ध को, अपने आचार के सम्बन्ध में और अपने प्रेम के सम्बन्ध के प्रलाप करने लगती है।

प्रेममय हो जाते हैं, मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। पर हा! अंत में करुण रस में उनकी समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है।

जोगिन—वाह अब यह क्या सोच रही हो! गाओ ले, अब नहीं मानूँगी।

ललिता—हाँ सखी, अब अपना वचन सच कर।

चन्द्रा०—(अर्द्धोन्माद की भाँति) हाँ हाँ, मैं गाती हूँ।

(कभी आँसू भरकर, कभी कई बेर, कभी ठहरकर, कभी भाव बताकर, कभी बेसुर-ताल ही, कभी ठीक-ठीक कभी टूटी आवाज से पागल की भाँति गाती है)

मन की कासों पीर सुनाऊँ।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊँ।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रगट जनाऊँ॥
रोम-रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान-शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ॥
मरमिन सखिन बियोग-दुखिन क्यों कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचंद' पिय मिलै तो पग परि गहि पटुका समझाऊँ॥

(गाते गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और जोगिन श्रीकृष्ण बनकर उठाकर गले लगाती है और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

पत—लाज। **खोनी**—नष्ट करना। **चवाई**—निंदक। **धरिहै उलटो नाऊँ**—उल्टा कलंकित करेगा। **सुजान-शिरोमणि**—चतुरों मे श्रेष्ठ। यहाँ श्री कृष्ण की ओर संकेत है। **हियरो**—हृदय। **मर्मिन**—भेद को जानने वाली। **पटुका**—कमर में बाँधने का कपड़ा।

सारांश—चंद्रावली का प्रलाप जब समाप्त होता है, योगिनी और ललिता उससे गाने के लिए कहती हैं। क्योंकि उसने गाने का वचन दिया था। चंद्रावली टूटे हुये स्वरों में विक्षिप्ता की भाँति गाती है—'मैं अपने मन की पीडा किसे दिखाऊँ? बातें करना व्यर्थ है। इससे लाज जायगी। और लोग निन्दा करेंगे। मेरे दुखों को कोई नहीं दूर कर सकता। उल्टे सब लोग कलंकित करेंगे। मेरी पीड़ा को जो जानता है, वही जानता है। मैं अपनी पीडा प्रगट करके सामान्य लोगों को क्यों जनाऊँ? मन को, लोगों को और नयनों को कौन सा रूप दिखाऊँ तथा कानों को कौन सा शब्द सुनाऊँ? बिना श्री कृष्ण के मैं हृदय किसको दिखाऊँ? मर्म ज्ञाता सखियाँ तो स्वयं विरह के दुख से दुखी हैं। उन्हे अपना दशा से क्यों दुख में डालूँ? यदि प्यारे मिल जाते तो उनके पैरों पर गिर कर उनका फेंट पकड़कर उन्हें समझाती।

'चंद्रावली' गाते-गाते मूर्च्छित सी हो जाती है, और ऐसा लगता है, कि गिर पड़ेगी। योगिनी श्रीकृष्ण बनकर चन्द्रावली का पकड़ लेती है, और गले लगाती है।

ललिता—(बड़े आनंद से) सखी बधाई है, लाखन बधाई है। ले होस में आ जा। देख तो कौन तुझे गोद लिए है!

चन्द्रा०—(उन्माद की भाँति भगवान् के गले में लपटकर)

पिय तोहि राखौंगी भुजन मैं बाँधि।
जान न दै हौं तोहि पियारे धरौंगी हिए सों नाँधि॥
बाहर गर लगाइ रखौंगी अंतर करौंगो समाधि।
'हरीचंद' छूटन नहिं पैहौ लाल चतुरई साधि॥
पिय तोहि कैसे हिये राखौं छिपाय?
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय॥
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय।
हियरे में मनहूँ के अंतर कैसे लेउँ लुकाय॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतैं हाय।
'हरीचंद्र' जीवनधन मेरे छिपत न क्यौं इत धाय॥
पिय तुम और कहूँ जिन जाहु।
लेन देहु किन मो रंकिन को रूप-सुधा-रस लाहु।
जो-जो कहौ सोइ-सोई धरि जित अमित उछाहु।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु॥
अनुदिन सुन्दर बदन-सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु।
'हरीचंद्र' पलकन की ओटैं छिनहु त नाथ दुराहु॥

भुजनि—भुजाओं। **बाँधि**—बाँधकर। **कसक**—पीड़ा। **रंकिन**—गरीबिनी **अमित**—बहुत अधिक। **अनुदिन**—प्रतिदिन। **सुधा निधि**—चन्द्रमा।

सारांश—'ललिता' चंद्रावली को चेत मे लाती है। चद्रावली आनन्द में विह्वल होकर गाती है—प्रियतम, मै तुझे अपनी भुजाओं मे जकड़कर रक्खूँगी। तुम्हे जाने न दूँगी, अपने हृदय में लगाकर रक्खूँगी। बाहर तुझे गले से लगाऊँगी, और भीतर हृदय की समाधि में बाँध रक्खूँगी। तुम चतुराई करने पर भी अब मुझसे छूट नहीं सकते।

प्रियतम, मैं तुम्हे किस प्रकार अपने हृदय मे छिपा लूँ। तुम्हारे सुन्दर स्वरूप को सब लोग देखते हैं, इससे मेरे मन में कसक पैदा होती है। मै तुम्हे अपने नेत्रों की पुतली बनाकर पलकों में छिपा लूँगी। किस तरह तुम्हें हृदय मे छिपा लूँ? तुम्हारा रूप ही मेरा भाग्य है। उसे सौतें मुझसे छीन रही हैं। हे जीवन धन तुम आकर क्यों नहीं मुझमें छिप जाते?

प्रियतम, तुम कहीं न जाओ। मैं गरीबिनी हूं। अपना रूप रूपी अमृत-रस लेने दो। तुम जो कहोगे, उत्साह पूर्वक करूँगी। तुझे हृदय में लगाकर रक्खूँगी। तुम मेरे मन में क्यों नहीं प्रवेश कर जाते? मेरे नेत्र रूपी चकोरों को, अमृत रस से पूर्ण अपना मुख प्रतिदिन दिखाया करो। नाथ, तुम क्षण भर के लिये भी मेरे नेत्रों से बिलग न हो।

पिय तोहि कैसे बस करि राखौं ।
तुव दृग मैं दृग तुव हिय मैं निज हियरो केहिविधि नाखौं ।।
कहा करौं का जतन विचारौं बिनती केहि बिधि भाखौं ।
'हरीचंद' प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं ।।

भगवान्—तौ प्यारी मैं तोहि छोड़िकै कहाँ जाउँगो, तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की शिक्षा करिबे कों तेरी लीला है ।

ललिता—अहा ! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है उसका अनुभव और कौन कर सकता है । जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है । सच है, जुगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किसको है ?

चन्द्रा०—पर नाथ, ऐसे निठुर क्यों हौ ? अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो ? हा ! लाखों बातें सोची थीं कि जब कभी पाऊँगी तो यह कहूँगी, यह पूछूँगी, पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता !

भग०--प्यारी ! मैं निठुर नहीं हूँ । मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ । परन्तु मोहि निहचै है के हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो बिरह प्यारो है । ताही सों मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ । या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विन को तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं विनकी बात खुल जाय । सो प्यारी यह बात हू दूसरेन कीं है । तुमारो का, तुम और हम तो एक ही हैं । न तुम हम सौं जुदी हो न प्यारीजू सौं । हमने तो पहिले ही कही कि यह सब लीला है । (हाथ जोड़कर) प्यारी, छिमा करियौ, हम तौ तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियाँ हैं ।

नाखौं—डालूँ । **जनमन की**—जन्म जन्मान्तर की । **अनुग्रह**—कृपा । **जुंगल**—दो । चन्द्रावली और की कृष्ण । **अकथ**—न कहने योग्य । **निहचै**—निश्चय । **बिनकी**—उनकी । **रिनियाँ**—ऋणी ।

सारांश—चन्द्रावली गाती है—प्रियतम, मैं तुझे किस प्रकार अपने बस में करूँ ? तुम्हारे नयनों, और प्राणों मे मैं किस प्रकार अपने नयनों और प्राणों को मिला दूँ ! मैं क्या करूँ ? कौन सा उपाय करूँ ? किस प्रकार प्रार्थना करूँ ? मैं अधिक तृषित हूँ । मैं किस प्रकार अधरामृत का भली भाँति पान करूँ ?'

श्री कृष्ण चंद्रावली को अपनी और उसकी अभिन्नता बताते हैं । ललिता दोनों के अभिन्न स्वरूप का दर्शन करके अत्यधिक आनंदित होती हैं । चन्द्रावली का गला अवरुद्ध हो उठा है ? उससे कुछ कहा नहीं जा रहा हैं । भगवान श्री कृष्ण उसके सामने अपने प्रेम मार्ग के रहस्यों का उद्घाटन करते हैं ।

उक्त पंक्तियों में पुष्टि मार्ग की भक्ति का कई स्थानो में प्रतिपादन किया गया है । जैसे— तू तो'''मेरी लीला है । युगल के'''किसको है । 'मैं तो अपुने'''वेई के नहीं ।'

तुमसे हम कभू उरिन होइवेई के नहीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

चंद्रा—(घबड़ाकर दोनों हाथ छुड़ाकर आँसू भर के) बस बस नाथ, बहुत भई इतनी न सही जायगी। आपकी आँखों में आँसू देखकर मुझसे धीरज न धरा जायगा। (गले लगा लेती है)

(विशाखा आती है)

विशाखा—सखी! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है के प्यारे सों कही दै चन्द्रावली की कुंज मैं सुखेन पधारौ।

चंद्रा—(बड़े आनंद से घबड़ाकर ललिता-विशाखा से) सखियो, मै तो तुम्हारे दिए पीतम पाए हैं। (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम-जनम गाऊँगी।

विशाखा—सखी, पीतम तेरो तू पीतम की हम तौ तेरी टहलनी हैं। यह सब तौ तुम सबन की लीला है। यामैं कौन बोलै और बोलै हूं कहा जौ कछू समझै तौ बोलै—या प्रेम की तौ अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसार हो यगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही मै न आवैगो। तू धन्य, तेरो प्रेम धन्य, याप्रेम के समझिवेवारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़ै सो धन्य। तो मैं और स्वामिनी मै भेद नहीं है, ताहू मैं तू रस की पोषक ठैरी। बस, अब हमारी दोउन की यही बिनती है कै तुम दोउ गलबाहीं दै कै बिराजौ और हम जुगलजोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं।

(गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं)

दोनों—नीके निरखि निहारि नैन भरि नैनन को फल आजु लहौ री
जुगुल रूप छबि अमित माधुरी रूप सुधा-रस सिंधु बहौरी॥
इनहीं सौ अभिलाख लाख करि इक इनहीं को नितहि चहौरी।
जो नर-तनहि सफल करि चाहौ इनहीं के पद-कंज गहौ री॥

सुखेन—सुख वक। **स्वामिनी**—राधिका जो। **परिलेख**—वर्णन। **प्रेम की टकसार**—उत्कृष्ट प्रेम।

सारांश—भागवान श्री कृष्ण चन्द्रावली से अपने प्रेम मार्ग का रहस्य बताते हैं। अपने प्रेमियों की चर्चा करते हुए वे साश्रु नयन हो उठते हैं। चन्द्रावली उनके प्रेमाश्रु को देख कर आकुल हो उठती है। इसी समय विशाखा आता है और श्री कृष्ण भागवान से कहती है, कि राधिका जी की आज्ञा है, कि वे सुख पूर्वक चन्द्रावली के प्रेम-कुंज में प्रवेश करें। चन्द्रावली आनंद से गद्‌गद हो उठता है, और सखियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करती हैं। विशाखा निवेदन के रूप में कहती हैं, कि यह तो हमारा कर्त्तव्य था! तुम दोनों ही कुंज में चलो, और एक दूसरे के गले हाथ डालकर विराजो! हम सब युगल रूप को देखकर अपना जीवन कृतार्थ करें।

करम-ज्ञान-संसार-जाल तजि बरु बदनामी कोटि सहौ री।
इनहीं के रस-मत्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहौ री॥
इनके बल जग-जाल कोटि अघ तून सम प्रेम प्रभाव दहौ री।
इनहीं को सरबस करि जानौ यहै मनोरथ जिय उमहौ री॥
राधा-चन्द्रावली-कृष्ण-व्रज-जमुना-गिरिवर मुखहिं कहौ री।
जनम-जनम यह कठिन प्रेमव्रत 'हरीचन्द्र' इकरस निबहौ री॥

भग०—प्यारी! और जो इच्छा होय सो कहौ। काहे सों कै जो तुम्हैं प्यारो है सोई हमैं हूं प्यारो है।

चन्द्रा०—नाथ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय—

परमारथ स्वारथ दोउ कहँ सँग मेलि न सानैं।
जे आचारज होइँ धरम निज तेइ पहिचानैं॥
वृंदाबिपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई॥
ज ाजाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्णचरित सबही कहैं।
यह रतन-दीप हरि-प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै॥

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं, और जवनिका गिरती है)

॥ इतिपरमफलचतुर्थ अंक ॥

बरु—चाहे। **अघ**—पाप। **भरत**—भरत मुनि, नाट्य शास्त्र के आचार्य। **थिर**—स्थिर। **जन वल्लभी**—बल्लभ संप्रदाय को मानने वाला। **अधिकार**—कृष्ण लीला देखने का अधिकार उसी को है, जिस पर श्री कृष्ण का अनुग्रह होता।

सारांश—कुंज में गल बाँही देकर युगल स्वरूप बैठते हैं। 'ललिता' और विशाखा दोनों ही सखियां गाती हैं— 'आज इन्हें भली भाँति देखो। और नेत्रों को कृतार्थ करो। दोनों की सुंदरता की मधुरता अमृत के समुद्र के रूप में बह रही है। इन्हीं में अपनी अभिलाषाएँ केंद्रित करो,। मानव-जीवन को कृतार्थ करना चाहते हो तो इन्हीं के चरण-कमलों को पकड़ो। ज्ञान उत्पन्न करो; और प्रपंच से भरे हुए संसार की लाज को छोड दो। यदि इनके लिए करोड़ों बदनामी उठानी पड़े, तो सहर्ष उठाओ: इनके प्रेम में सदा छके रहो; और इन्हीं के बन कर रहो। इनके प्रेम के प्रभाव से संसार के प्रपचो और पापों का तृणावत विनाश करो। इन्हीं को सर्वस्व समझो, और इसी अभिलाषा को अपने हृदय में स्थान दो। दिन रात सदा मुख से राधा, चंद्रावली, कृष्ण, ब्रज, यमुना, और गोवर्द्धन आदि कहा करो। प्रत्येक जन्म में, एक रस होकर इस कठिन प्रेम व्रत का पालन करो।

भगवान श्री कृष्ण उन दोनों को भी अपनी अभिलाषा का स्मरण कराते हैं। वे कहते हैं। कि तुम सब चाहे जो कहो, हम तुमसे पृथक नहीं है।' चद्रावली कहती है, कि मैं क्या कहूँ! मेरी तो एक मात्रा यही इच्छा है—

इस संसार में लोग स्वार्थ और परमार्थ को पृथक पृथक ही समझे। दोनों को एक में न मिलायें। जो लोग ऐसा आचरण करें; वही धर्म को पहचानने वाले समझे जायं। वृंदावन का विहार सदा अमर सुख प्रदान करने वाला हो। बल्लभ संद्रदाय का अनुयायी होकर कोई भक्ति से रहित न हो। संसार के प्रपंचों को छोड़कर श्री कृष्ण की कृपा प्राप्त करके लोग श्री कृष्ण चरित का गान करें। श्री कृष्ण के प्रेम का यह रत्न—दीप युग—युगों तक प्रकाशित रहे।

विविध उपयोगी प्रश्न

१—नाटक क्या है ? उसका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ है ? [उत्तर, भूमिका में देखिए]

२—नाटक के जन्म के सम्बन्ध में लोगों के विचारों का स्पष्टीकरण करते हुये उनकी आलोचना कीजिये। [उत्तर, भूमिका में देखिये]

३—नाट्य कला के विकास में उत्थान-पतन के परिणाम स्वरूप प्रादुर्भूत होने वाली स्थितियों पर प्रकाश डालिये।

४—प्रमाणित कीजिए, कि नाट्य कला का विकास मानवता के विकास के साथ ही साथ हुआ है ?

५—प्रमाणित कीजिए, कि भारतीय नाट्य कला पूर्ण रूप से मौलिक है !

६—भारतीय नाट्यकला के सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख करते हुए उसकी मौलिकता पर प्रकाश डालिए ! [उत्तर भूमिका में देखिये]

७—काव्य किसे कहते हैं ? उसके भेदों पर प्रकाश डालते हुये दृश्य काव्य की विशेषताएँ बताइये !

८—'रूपक' और 'नाटक' के अन्तर को स्पष्ट करते हुए आज के 'नाटक' की विवेचना कीजिए।

९—पात्र और रस की दृष्टि से 'रूपक' के भेदों पर विचार कीजिए !

१०—'नाटक' और 'नाटिका' के मौलिक भेद पर प्रकाश डालते हुए 'नाटिका' की विशेषताएँ बताइए।

११—नाटक में 'वस्तु किसे' कहते हैं ? प्रमाणित कीजिए कि वस्तु के समुचित विस्तार पर ही नाट्यकला की सफलता पूर्ण रूप से निर्भर करती है ?

१२—'अवस्था' क्या वस्तु है ? नाटक की अवस्थाओं पर प्रकाश डालिए !

१३—'सन्धि' किसे कहते हैं ? नाटक की संधियों का चित्रण कीजिए !

१४—'प्रवृत्ति' का अभिप्राय समझाइए; और यह बताइये, कि प्रवृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

१५—'अर्थोपेक्षक' किसे कहते हैं, और उसके कितने भेद होते हैं ?

१६—पात्र किसे कहते हैं ? उसके भेदों पर प्रकाश डालते हुए प्रत्येक के उपभेदों की भी चर्चा कीजिए !

१७—'नायक' में 'त्रिगूढ़' नायक किसे कहते हैं ? चंद्रावली के त्रिगूढ़ नायक पर प्रकाश डालिए।

१८—'अभिनय' किसे कहते हैं ? उनके कितने प्रकार होते हैं ?

१९—'रस' क्या वस्तु है ? उसके भेदों पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

२०—वृत्ति किसे कहते हैं, और उसके कितने भेद होते हैं ?

२१—'रङ्गशाला', अंकावतार, नान्दी, सूत्रधार, और स्थापक पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए [उत्तर भूमिका में देखिए]

२२—'नाट्यकला' की दृष्टि से वीर गाथा काल और भक्ति काल पर प्रकाश डालिए और यह बताइए, कि इन दोनों युगों में हिन्दी नाट्य कला का विकास क्यों नहीं अधिक हो सका ?

२३—रीति काल नाट्यकला के विकास के लिए अनुकूल युग था—विचार पूर्वक प्रमाणित कीजिए !

२४—भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के पूर्व की हिन्दी नाट्य कला पर प्रकाश डालिए ! [उत्तर भूमिका में देखिए]

२५—प्रमाणित कीजिए, कि आधुनिक नाट्य कला का जन्म भारतेंदु जी के ही द्वारा हुआ है ?

२६—भारतेंदु हरिश्चंद्र जी की नाट्य कला का वर्गीकरण करते हुए उनके नाटको की आलोचना कीजिए !

२७—प्रमाणित कीजिए, कि भारतेंदु हरिश्चंद्र जी नाट्य रचना के क्षेत्र में एक ऐसे मिलन-बिन्दु पर खड़े हैं, जहाँ नवीन और प्राचीन धाराएँ आकर मिलती हैं ?

२८—हिन्दी नाट्यकला का वर्गीकरण कीजिए, और यह बताइए, कि भारतेंदु हरिश्चंद्र जी की नाट्यकला किस दिशा की ओर उन्मुख है ? [उत्तर भूमिका में देखिए]

२९—भारतेंदुजी में सर्वतोमुखी प्रतिभा थी—इस पर प्रकाश डालिए।

३०—भारतेंदुजी के द्वारा हिन्दी नाट्य कला में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं—उन पर प्रकाश डालिए।

३१—भारतेंदु काल की नाट्य कला पर विचार पूर्वक प्रकाश डालिए। [उत्तर भूमिका में देखिए]

३२—'चंद्रावली' एक नाटका है। प्रमाणित कीजिए, कि उसमें 'नाटिका के सिद्धान्तों का उचित रूप से प्रतिपादन किया गया है ?

३३—'नाटिका' के सिद्धान्तों को सामने रखकर 'चन्द्रावली' की आलोचना कीजिए।

३४—'चन्द्रावली नाटिका' में नाट्य कला के प्राचीन आदर्शों की रक्षा की गई है—इस पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

३५—'कथानक' की दृष्टि से चन्द्रावली की आलोचना कीजिए !

३६—चन्द्रावली के कथानक में नाटकत्त्व है—इस पर अपने विचार प्रगट कीजिए।

३७—'कार्य व्यापार' और उसकी अवस्थाओं की दृष्टि से 'चन्द्रावली' पर प्रकाश डालिए।

३८—'सन्धियों' की दृष्टि से चन्द्रावली नाटिका की समीक्षा कीजिए।

३९—'चन्द्रावली' में प्रेम के तत्वो का विकास स्वाभाविक रूप में हुआ है—प्रकाश डालिए।

४०—'चन्द्रावली' के प्रणाय में उच्चादर्शों की ही उद्भावना हुई है—इस पर अपनी संमति प्रगट कीजिए !

४१—'प्रेम' और 'भक्ति' दोनों में किसका 'चन्द्रावली' में सर्वाधिक विकास हुआ है—विचार पूर्वक प्रकाश डालिए !

४२—'चन्द्रावली' के पात्रो का चरित्र चित्रण करते हुए यह बताइए, कि किसका चरित्र सर्वश्रेष्ठ है, और क्यों ?

४३—'चंद्रावली' के प्रेम और उसके विरह पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध कीजिए, कि उसके मन की स्थितियाँ स्वाभाविकता के क्षेत्र में ही घटित हुई हैं।

४४—'अन्तद्वन्दों, की दृष्टि से चंद्रावली' एक सफल नाटिका है—प्रमाणित कीजिए।

४५—'अभिनयात्मकता' की दृष्टि 'से 'चन्द्रावली' की आलोचना कीजिए !

४६—'चन्द्रावली' के 'प्रकृति वर्णन' को सामने रखकर यह बताइए, कि उसमें नाटककार को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है !

४७—रस की दृष्टि से चन्द्रावली की आलोचना कीजिए ! [उत्तर, भूमिका में देखिए]